राष्ट्रीय जीवनचरित माला

कबीर

डॉ. पारसनाथ तिवारी

H
811.21
K 112 T

811.21
K112T

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

राष्ट्रीय जीवनचरित माला

Kabir

कबीर

Parasnath Tiwari

डॉ. पारसनाथ तिवारी

National Book Trust

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
नई दिल्ली

जनवरी १९६७ (पौष १८८८)

© पारस नाथ तिवारी १९६७

Library IIAS, Shimla
H 811.21 K 112 T
00025774

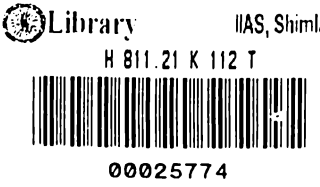

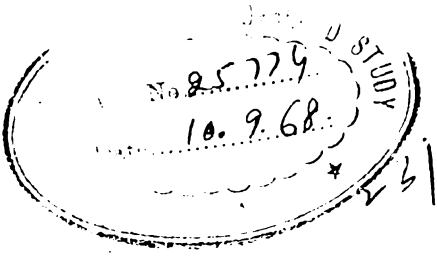

रु० २.००

No. 25774
10. 9. 68

सचिव, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली-१३ द्वारा प्रकाशित
और मॉडर्न प्रिण्टरी लि०, इन्दौर द्वारा मुद्रित

प्रस्तावना

आदि काल से ही इस देश में, जीवन के हर क्षेत्र में, असाधारण व्यक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ है। हमारा इतिहास ऐसे महान् लोगों के नामों से भरा पड़ा है जिनकी कला, साहित्य, राजनीति, विज्ञान और अन्य क्षेत्रों में महत्वपूर्ण देन रही है। बहुत से ऐसे व्यक्ति हुए हैं जिनके नाम से तो लोग परिचित हैं लेकिन जिनके जीवनवृत्त और कार्य के बारे में उनको बहुत कम ज्ञान है। कुछ ऐसे भी लोग हुए हैं, जिन्होंने असाधारण सफलता पायी है, लेकिन उनके विषय में लोगों को जानकारी नहीं है।

किसी देश का इतिहास, बहुत अंश तक, उसके नर-नारियों का इतिहास है। उन्होंने ही उसको गढ़ा, सँवारा और उसका विकास किया। जन-साधारण के लिए यह आवश्यक है कि वह इन विभूतियों के बारे में कुछ जाने ताकि वह यह समझ सके कि देश का विकास किन चरणों से होकर गुज़रा है।

कई देशों में इसी उद्देश्य से जीवनियों का कोश प्रकाशित किया गया है। यह खेद की बात है कि हमारे यहाँ ऐसी कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है। इस जीवनचरित-माला का उद्देश्य विद्वत्तापूर्ण और सर्वांगीण पुस्तक प्रस्तुत करना नहीं, बल्कि साधारण पाठक के लिए सरल, सुबोध और रोचक रूप में, देश के महान् स्त्री-पुरुषों का जीवनवृत्त प्रस्तुत करना है। अलग-अलग भागों में राष्ट्रीय जीवनचरित्रों का एक उपयोगी पुस्तक-कोश बनाना हमारा अभिप्राय है।

हम प्रोफेसर के. स्वामीनाथन् और श्री महेन्द्र देसाई के आभारी हैं जिन्होंने इस पुस्तक-माला का सम्पादन करना स्वीकार किया है।

नई दिल्ली,
२८, जुलाई १९६६

बालकृष्ण केसकर

जीवन-चरित

आज से लगभग साढ़े पाँच सौ वर्ष पहले काशी के पास लहरतारा में नीरू जुलाहा और उसकी पत्नी नीमा को हाल ही का पैदा हुआ एक बच्चा पड़ा मिला। कहते हैं, नीरू उसी दिन नीमा का गौना कराकर ला रहा था। इसलिए उस बच्चे को ऐसी सुनसान जगह में पाकर वे लोग अजीब धर्म-संकट में पड़े। बच्चा इतना प्यारा था कि उसे छोड़ने का उनका दिल नहीं करता था लेकिन दूसरी ओर उसे साथ ले जाने में लोकलाज का भी डर था। दोनों में काफ़ी विवाद हुआ। नीरू बदनामी के डर से मना करता लेकिन नीमा का वात्सल्य उस बच्चे के लिए उफ़ना पड़ता। इस प्रकार काफ़ी पशोपेश के बाद उन लोगों ने लोकलाज की परवाह नहीं की और बच्चे को साथ ले जाना ही तै किया। काशी में जो मुहल्ला हमारे चरित-नायक के ही नाम पर कबीरचौरा के रूप में आजकल प्रसिद्ध है, उसी में नीरू का मकान बताया जाता है। उस जगह को आजकल 'नीरूतल्ला' भी कहते हैं। वहाँ पहुँचने पर अपने रिवाज के अनुसार बच्चे के नामकरण के लिए जब उन लोगों ने किसी 'क़ाज़ी' को बुलाया और उसने क़ुरान खोला तो कहते हैं कि उसमें हर जगह कबीर, कुब्रा, अकबर आदि शब्द ही मिले। अरबी में ये सभी शब्द महान् परमात्मा के लिए आते हैं। क़ाज़ी हैरान हुआ कि एक साधारण जुलाहे के बच्चे को किस तरह परमात्मा का नाम दिया जाए? अपना शक मिटाने के लिए उसने दुबारा, तिबारा क़ुरान देखा लेकिन हर बार उसे यही शब्द मिले। यह ख़बर सुनकर कुछ क़ाज़ी और इकट्ठे हुए लेकिन उन लोगों को भी हर बार किताब खोलने पर यही नाम मिलते थे। सब क़ाज़ियों ने हैरान होकर नीरू को यह सलाह दी कि वह इस बच्चे को क़त्ल कर दे नहीं तो इसके कारण उनका अमंगल हो

सकता है। कहा जाता है कि नीरू ने धर्माधिकारियों की आज्ञा से जब इस बच्चे पर तलवार चलाई तो उस पर उसके वार का कोई असर नहीं हुआ। बहुत से लोगों को इस घटना पर विश्वास नहीं होगा लेकिन यह आसानी से माना जा सकता है कि नीरू और नीमा को मौलवियों की यह सलाह पसंद न आई होगी, क्योंकि इस बच्चे को मारने की बात सुनकर उनके दिल में उसके प्रति कितना स्नेह उमड़ा होगा, इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। जो भी हो, फ़िलहाल इस बच्चे का नाम **कबीर** पड़ गया और यही बच्चा जिसके असली माँ-बाप का पता दुनिया को आज तक नहीं लग पाया, आगे चलकर भारतवर्ष का एक महान् संत हुआ और उसने अपने आदर्शों से सिर्फ़ इसी देश के लोगों को ही नहीं बल्कि दूसरे देशों के भी अनगिनत लोगों को सत्य, त्याग, निष्पक्षता तथा निर्भीकता की प्रेरणा दी।

कबीर का जन्म किस सन् में किस तारीख़ को हुआ था, इसे ठीक-ठीक बता पाना बड़ा कठिन है। उनकी जन्मतिथि के बारे में एक छंद काफ़ी समय से प्रचलित है, लेकिन जैसे खुद कबीर को जन्म देनेवालों के बारे में कुछ मालूम नहीं, वैसे ही इस छंद के जन्मदाता के बारे में भी कुछ नहीं कहा जा सकता और न यही बताया जा सकता है कि यह कब से प्रचलित है। छंद इस प्रकार है—

चौदह सौ पचपन साल गए,
चंद्रवार इक ठाठ ठए।
जेठ सुदी बरसायत को,
पूरनमासी प्रगट भए॥

अर्थात् विक्रम के १४५५ साल बीत जाने पर, सोमवार को जेठ पूनो अर्थात् वटसावित्री के पर्व पर, कबीर साहब प्रकट हुए थे। वटसावित्री या वरसायत के दिन कबीरपंथी लोग अब भी कबीर साहब के जन्मदिन का उत्सव मनाया करते हैं। लेकिन कुछ लोगों ने गिनती करके पता लगाया है कि सोमवार

को जेठ पूनो संवत् १४५५ में नहीं बल्कि १४५६ में पड़नी चाहिए। इसलिए 'चौदह सौ पचपन साल गये' का मतलब यह भी हो सकता है कि १४५५ वाँ संवत् बीत जाने पर अर्थात् सं० १४५६ में उनका जन्म हुआ होगा। लेकिन असल में उनका यह विचार ठीक नहीं है, क्योंकि सं० १४५५ की जेठ पूनो को सोमवार ही पड़ता है। साथ ही कुछ लोग कबीर के जीवन से संबंधित कुछ और घटनाओं का मेल बिठाने के लिए उनका जन्म पच्चीस-तीस वर्ष पहले ही मानते हैं, उनकी यह अटकल सही भी हो सकती है और ग़लत भी।

लहरतारा वाली घटना को लेकर भी बहुत-सी कहानियाँ चल पड़ी हैं। एक कहानी इस प्रकार बतलाई जाती है, कि एक दिन एक ब्राह्मण अपनी विधवा कन्या के साथ स्वामी रामानंदजी के दर्शन के लिए गया। अपने पिता के साथ जब कन्या ने भी स्वामीजी को प्रणाम किया तो अचानक उनके मुख से निकला—'पुत्रवती भव'! महात्माजी का दिया हुआ आशीर्वाद मिथ्या नहीं हो सकता था। अतः कुछ समय पश्चात् उसके गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसको उसने, लोकलाज के भय से, लहरतारा के तालाब में फेंक दिया। कुछ लोग इस कहानी में और भी चमत्कार का अंश जोड़ते हैं। उनका कहना है कि जब स्वामी रामानंद को यह मालूम हुआ कि वह ब्राह्मण कन्या विधवा है, तब उन्होंने कहा कि, "पुत्री, मेरा वचन मिथ्या तो नहीं हो सकता, लेकिन तुझे कलंक भी नहीं लगेगा और तेरा पुत्र प्रसिद्ध संत होगा।" कहते हैं, इस घटना के बाद ही उस लड़की के हाथ में एक फफोला निकला जो समय पाकर फूट गया और उसमें से एक गोल-मटोल जीव बाहर निकला जो ज़मीन पर गिरते ही आदमी के बच्चे की तरह हो गया। इस कहानी के अनुसार कबीर का असली नाम 'करवीर' अर्थात् 'हाथ से पैदा हुआ वीर' माना जाता है। इस कहानी का उद्देश्य यही सिद्ध करना जान पड़ता है कि कबीर साहब किसी के गर्भ से पैदा नहीं हुए थे,

बल्कि वे अयोनिज थे।

दूसरी कहानी और भी अधिक दिलचस्प है। उसके अनुसार एक बार बैकुंठ में विष्णु भगवान लक्ष्मीजी से बातचीत करने बैठे थे। बीच में एक बार वे अचानक उठकर बाहर चले गए और थोड़ी देर में फिर वापस आ गए। बातचीत में बाधा पड़ने से लक्ष्मीजी कुछ खिन्न हो गईं और उन्होंने विष्णु से बीच में ही उठकर चले जाने का कारण पूछा। विष्णु ने उत्तर दिया कि उनका एक भक्त संकट में पड़ गया था। उसी को बचाने के लिए उन्हें बीच में उठना पड़ा था। लक्ष्मीजी ने आश्चर्य प्रकट किया कि उनसे भी बड़ा भक्त दुनिया में ऐसा कौन है जिसके लिए भगवान इतने परेशान हो गए। विष्णु भगवान ने लक्ष्मीजी को बतलाया कि उनसे बड़े भक्त भी दुनिया में हैं और उनका उद्धार वे सारे काम छोड़कर किया करते हैं। लक्ष्मीजी को इस बात से बड़ी नाराज़गी हुई और उन्होंने उस भक्त की परीक्षा लेने का विचार किया। विष्णु ने बहुतेरा मना किया, किंतु लक्ष्मीजी मानीं नहीं। उन्होंने काशीपुरी में आकर मालिन का रूप धारण किया और एक हरा-भरा बाग ऐसे स्थान पर सजाया जहाँ से होकर वह भक्त (स्वामी रामानंद) गंगा स्नान के लिए जाया करते थे। स्वामीजी ने भगवान की पूजा के लिए कुछ फूल तोड़ने की इच्छा से उस बाग में ज्योंही प्रवेश किया और दो-चार फूल तोड़े ही थे कि मालिन वेशधारी लक्ष्मीजी ने आकर उनसे कहा कि 'महाराज, फूलों की चोरी कर रहे हैं?' स्वामीजी ने तोड़े हुए उन फूलों को मालिन के अंचल में फेंक दिया और अपना रास्ता पकड़ा। किंतु थोड़ी देर बाद घूमकर देखा तो न वहाँ कोई बाग़ था और न मालिन। इधर लक्ष्मीजी भक्त की चोरी पकड़ लेने से बहुत प्रसन्न हो रही थीं। जब वे बैकुंठ पहुँचीं तो विष्णुजी ने उनका स्वागत करते हुए भक्त की परीक्षा के बारे में पूछा। लक्ष्मीजी ने चोरी में पकड़े हुए फूलों को दिखाने के लिए ज्योंही आँचल पसारा तो क्या देखती हैं कि फूलों की जगह एक सुन्दर बालक मचल रहा

है ! भगवान् विष्णु ने उचित अवसर पाकर ठठोली की कि 'आप तो गई थीं भक्त की परीक्षा लेने, और यह क्या लेकर आ गईं ?' लक्ष्मीजी के सिर पर घड़ों पानी पड़ गया। उन्होंने भगवान के सामने भक्त से अपनी हार स्वीकार की और अपनी भूल के लिए क्षमायाचना की। विष्णु ने उन्हें दिलासा देते हुए कहा कि "ख़ैर, जो हुआ सो हुआ। अब इस बालक को वहीं रख आओ जहाँ से इसे ले आई हो। आगे चलकर यह मेरा प्रसिद्ध भक्त होगा।" लक्ष्मीजी ने पृथ्वी पर आकर उस बालक को लहरतारा नामक तालाब में कमलपत्र पर रख दिया। यही बालक आगे चलकर कबीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

तीसरी कहानी के अनुसार कबीर साहब शुकदेवजी के अवतार माने जाते हैं। कहा जाता है कि महादेवजी की आज्ञा से शुकदेवजी लोककल्याण के लिए पृथ्वी पर आए; किंतु पूर्वजन्म में चूँकि वे बारह वर्ष तक गर्भ-वास का दुःख भोग चुके थे इसलिए इस बार गर्भवास से बचने के लिए उन्होंने अपने को एक सीपी में बन्द कर लिया और उसे गंगा के बहाव में छोड़ दिया। यही सीपी बहते-बहते उपर्युक्त तालाब में पहुँच गई और दैव-योग से वहीं एक पुरइनपात पर खुल गई, जिसमें से एक सुंदर बालक प्रकट हुआ। यही बालक आगे चलकर कबीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

ऐसा लगता है कि ऊपर दी हुई सभी कहानियाँ कबीर साहब के देहांत के काफ़ी समय बाद प्रचलित हुई होंगी, क्योंकि पुराण की कथाओं की तरह उनमें कल्पना की उड़ान अधिक दिखलाई पड़ती है। लक्ष्मी और शुकदेव संबंधी कहानियाँ तो बिलकुल ही पुराणपंथी हैं; पहली कहानी में सच्चाई का कुछ अंश माना जा सकता है। लेकिन कबीरपंथी लोग इनमें से किसी भी कहानी में विश्वास नहीं करते। उनका कहना है कि कबीर साहब किसी के गर्भ से पैदा नहीं हुए थे। वे सत्पुरुष परमात्मा के अंश हैं और न कभी पैदा होते हैं, न मरते हैं; बल्कि जब कभी ज़रूरत पड़ती है,

अपने आप प्रकट हो जाया करते हैं। वे मानते हैं कि कबीर साहब के तरह अवतार पहले तीन युगों में हो चुके थे। चौदहवीं बार कलियुग में सं० १४५५ वि० की जेठ पूर्णिमा के दिन सत्पुरुष का दिव्य प्रकाश फिर काशी शहर के पास लहरतारा में उतरा। उस समय अष्टानंद वैष्णव उस तालाब के किनारे विराजमान थे। मंद-मंद वर्षा और बादलों के कारण हल्के अंधकार में बिजली चमक रही थी। फूल खिले थे जिनपर भौंरे गुंजार रहे थे.....। इस अनुपम ज्योतिपुंज का दर्शन कर अष्टानंद को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने इस घटना का सारा विवरण अपने गुरु स्वामी रामानंद को सुनाया। स्वामीजी ने कहा कि जिस दिव्य ज्योति का दर्शन तुमने किया है उसके विषय में जल्दी ही तुम बहुत-सी बातें सुनोगे और उसकी कीर्ति की धूम मच जाएगी। यह दिव्य ज्योति तालाब में आकर शिशु के रूप में हो गई और एक कमल के फूल पर क्रीड़ा करने लगी। नीमा को इसी दिव्य बालक के दर्शन हुए थे।

कबीरपंथी ग्रंथों से यह भी मालूम होता है कि नीरू और नीमा अपने किसी पूर्वजन्म में सुदर्शन नामक भंगी के माता-पिता थे। सुदर्शन बड़ा भक्त था, इसलिए ये लोग भंगी की देह छोड़कर अगले जन्म में ब्राह्मण-ब्राह्मणी हुए और चंदवार नामक शहर में रहने लगे। तब इनका नाम नर-हरि और लछिमा था। इनके स्नेहवश कबीर साहब ने इनके घर अवतार लिया, लेकिन मोहवश जब वे इन्हें पहचान न पाए तो कबीर साहब गुप्त हो गये। उनके वियोग में उन दोनों ने भी शरीर छोड़ दिया और काशी में तीसरी बार जुलाहा-जुलाही के रूप में पैदा हुए और उनका नाम क्रमशः नीरू और नीमा हुआ। आगे की कहानी वैसी ही है; केवल इतनी बात और मिलती है कि नामकरण के समय जब क़ाज़ी ने नीरू से इस बच्चे को क़त्ल कर देने के लिए कहा और उसकी आज्ञानुसार जब नीरू ने छुरी चलाई तो कबीर ने यह पद सुनाया—

संतो मैं अविगत सौं चलि आया ।
मेरा मरम किनहूं नींह पाया ।।
ना मेरे जनम न गरभ बसेरा, बालक ह्वै दिखलाया ।
कासीपुरी जंगल बिच डेरा, तहां जुलाहै पाया ।।१।।
ना मेरे धरनि गगन पुनि, नाहीं अैसा अगम अपारा ।
जोति सरूप निरंजन देवा, सो है नांव हमारा ।।२।।
हता बिदेह देह धरि आया, काया कबीर कहाया ।
पिछले जनम में कौल किया था, तब तेरे घर आया ।।३।।
ना मेरे हाड़ चाम नींह, लोहू एकै नांव उपासी ।
तारन तरन अभय पद दाता, कहै कबीर अबिनासी ।।४।।

इस पद में 'पिछले जनम' की जो चर्चा हुई है उसके बारे में पहले ही बता दिया गया है । इसके पहले भी सतयुग, त्रेता और द्वापर में कबीर साहब क्रमशः सतसुकृत, मनींद्र और करुणामय नाम से प्रकट हो चुके थे—ऐसा कबीरपंथियों का विश्वास है । जहाँ तक श्रद्धा और विश्वास का प्रश्न है, उसके विरोध में यहाँ कुछ अधिक कहना उचित नहीं जान पड़ता, क्योंकि श्रद्धा से बहुत बड़े-बड़े काम होते हैं । लेकिन यह भी ज़रूरी है कि वह अंधश्रद्धा न हो, नहीं तो वह हमें नीचे भी ढकेल सकती है । वैसे सामान्य बुद्धि के आदमियों को इन कहानियों में बहुत-सी बातें ऐसी मिलेंगी जिन पर एकदम विश्वास कर लेना उनके लिए बहुत कठिन होगा ।

कबीर साहब के जन्म के विषय में जितनी भी कथाएँ अब तक मालूम हुई हैं उन सबको मिला-जुलाकर यही कहा जा सकता है कि वास्तव में उन महात्मा को जन्म देनेवालों का पता किसी को नहीं है । यह भी ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि वे किस जगह पैदा हुए थे ? लहरतारा का नाम कई कहानियों में मिलता है, इसलिए अधिकतर उसी को उनका जन्म-स्थान माना जाता है । लेकिन बहुत से लोग आज़मगढ़ ज़िले के बेलहरा

नामक गाँव को कबीर साहब का जन्मस्थान मानते हैं और कहते हैं कि 'बेलहारा' ही बदलते-बदलते 'लहरतारा' हो गया। फिर भी पता लगाने पर न तो बेलहरा गाँव का ठीक पता चल पाता है और न यही मालूम हो पाता है कि 'बेलहरा' का 'लहरतारा' कैसे बन गया और वह आज़मगढ़ ज़िले से काशी के पास कैसे आ गया? इसी तरह बहुत से लोग यह भी मानते हैं कि कबीर साहब मगहर में पैदा भी हुए थे और मरे भी वहीं थे, और इसके प्रमाण के लिए उनका यह पद प्रस्तुत है—

पहिले दरसन मगहर पायो फुनि कासी बसे आई।

लेकिन एक बड़ी भारी कठिनाई यह है कि बहुत से पद और दोहे दूसरे लोगों ने बनाकर कबीर साहब के नाम पर बाद में चालू कर दिए। इसी तरह का एक पद पहले भी दिया गया है और यह पद भी जिसमें ऊपर की पंक्ति मिलती है, ऐसा ही हो सकता है। वास्तव में केवल इतना ही निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उनका पालन-पोषण नीरू और नीमा ने किया था जो जाति के जुलाहे थे और काशी के रहनेवाले थे।

कबीर के बचपन के विषय में भी इसी तरह बहुत-सी कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि बिना कुछ खाए-पिए ही उनका शरीर बढ़ता जाता था। ऐसा देखकर नीरू और नीमा को बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचते थे कि यह बच्चा कैसा है कि बिलकुल कुछ खाता-पीता ही नहीं? उन्हें दुःखी देखकर कबीर ने दूध पीना शुरू कर दिया। लेकिन यह दूध भी बड़े अनोखे ढंग से निकाला जाता था। एक अनब्याई बछिया के नीचे मिट्टी का एक कोरा बर्तन रख दिया जाता। कबीर साहब उस बछिया की ओर दूध की इच्छा से ज्योंही देखते त्योंही वह बर्तन दूध से लबालब भर जाता और वही दूध वे प्रतिदिन पीते थे।

जुलाहा परिवार में पलने के बावजूद भी कबीर राम, गोविंद और हरि आदि का नाम जपा करते थे। उस समय देश पर मुसलमानों का राज

था और हिंदुओं के ऊपर तरह-तरह के जुल्म हुआ करते थे। ऐसी हालत में दोनों जातियों में परस्पर प्रेम की जगह घृणा ही अधिक रहती थी। इसलिए यह स्वाभाविक था कि एक मुसलमान परिवार के बच्चे को 'राम-राम' कहते देखकर उसकी बिरादरी वाले उलझन में पड़ते। मुसलमान लोग उनकी हरकतों को देखकर खीझ उठते और कहते कि, 'यह लड़का बड़ा काफ़िर (नास्तिक) होगा।' कबीर इसका जवाब इस तरह देते कि, "काफ़िर वह है जो पराया धन लूटता हो, ढोंग बनाकर दुनिया को ठगता हो, बेकसूर जीवों का वध करता हो।' कबीर साहब के कुछ पद ऐसे हैं जिनसे उनकी ज़िंदगी के इस पहलू का सही-सही पता चल जाता है और वे पद हैं भी ऐसे जिन्हें कबीर की असली रचनाएँ कहा जा सकता है। एक पद में उन्होंने क़ाज़ी से कहा है कि "तुम क़ुरान का बाहरी ढकोसला छोड़कर राम का भजन करो नहीं तो भारी जुल्म करोगे। मैंने तो राम का ही आसरा पकड़ा है, भले ही तुर्क लोग मुझे समझाते-समझाते हार जायँ।"—

छांड़ि कतेव रांम भजु बौरे, जुलुन करत है भारी।
कबीरै पकड़ी टेक रांम की, तुरुक रहे पचि हारी॥

कबीर साहब राम-भक्ति के नशे में बचपन से ही मस्त रहा करते थे। इस मस्ती में कभी-कभी वे अपना कताई-बुनाई का धंधा भी छोड़ दिया करते थे जिससे नीमा उलझन में पड़ जाया करती थी कि या ख़ुदा, यह छोकरा कैसे जिएगा? लेकिन वे माता को समझाते थे कि जब मैं नली के छेद में तागा डालने लगता हूँ तो मेरा प्यारा राम मुझे भूल जाता है। मैं क्या करूँ? तुम चिंता न करो। वह तीनों लोकों की सँभाल करने वाला है, वही हमारी भी ज़रूरतों को पूरा करेगा—

तननां बुननां तज्यौ कबीर।
रांम नांम लिखि लियौ सरीर॥
मुसि मुसि रोवै कबीर की माई।

यह बारिक कैसे जीवै खुदाई ।।
जब लगि तागा बाहौं बेही ।
तब लगि बिसरै रांम सनेही ।।
कहत कबीर सुनहु मेरी माई ।
पूरनहारा त्रिभुवनराई ।।

एक ओर तो हिंदू देवताओं का नाम लेने के कारण मुसलमान लोग उनसे चिढ़े हुए थे, दूसरी ओर हिंदू भी उनसे खुश नहीं थे, क्योंकि प्रेम और भक्ति में अटूट विश्वास दिखलाते हुए भी वे हिंदुओं की मूर्तिपूजा, छूआछूत वगैहरा की खूब कसकर खबर लेते थे। कबीर साहब अक्सर हिंदू वैष्णव भक्त की तरह रहते भी थे। इससे ब्राह्मण लोग अप्रसन्न रहते थे। वे सोचते थे कि मुसलमान कुल में रहते हुए एक वैष्णव की तरह आचरण करना उनकी अनाधिकार चेष्टा है। वे लोग कबीर साहब से पूछताछ करते कि किस वैष्णव गुरु ने उन्हें चेला बनाया है? उस समय लोग सोचते थे कि निगुरे वैष्णव को मुक्ति नहीं मिला करती। कबीर इन बातों से तंग आ गए। कहा जाता है कि काशी में उस समय के सबसे मशहूर वैष्णव आचार्य स्वामी रामानंद रहा करते थे। कबीर के मन में उन्हीं से दीक्षा लेने की इच्छा पैदा हुई। लेकिन मुश्किल यह थी कि एक वैष्णव आचार्य एक जुलाहे को दीक्षा किस तरह दे सकता था? इस बाधा को दूर करने की एक तरकीब कबीर साहब ने ढूंढ़ निकाली। स्वामीजी रोज धुंधलके में ही अपने सेवकों के साथ गंगा स्नान के लिए जाया करते थे। कबीरदास बहुत तड़के ही उनके रास्ते में कहीं बैठ गए। स्वामीजी राम-राम करते हुए वहाँ से गुजर गए और कबीर उनका दर्शन पाकर और 'राम' नाम को ही गुरुमंत्र समझकर अपने घर वापस आ गए फिर कंठी-माला पहनकर चारों ओर प्रचारित करने लगे कि स्वामी रामानंद ने उन्हें अपना चेला बना लिया। कुछ लोग यह कहते हैं कि अँधेरे में जब स्वामीजी की खड़ाऊँ से कबीर साहब को चोट

लगी तब स्वामीजी के मुख से 'हाय राम' निकला था, और कबीर ने उसी को मंत्र समझ लिया।

यह ख़बर सुनकर नीरू-नीमा अलग परेशान हुए कि यह कहाँ का घर-घालन पैदा हुआ कि अपनी बिरादरी के रीति-रिवाज छोड़कर माथे में तिलक लगाने और गले में माला डालने लगा। उधर हिन्दुओं में अलग खलबली मची कि स्वामी रामानंद ने क्या गजब ढाया कि एक मुसलमान को दीक्षा दे दी? यह खबर स्वामीजी के पास भी पहुँचाई गई। उन्हें भी आश्चर्य हुआ, क्योंकि उन्होंने अपनी जानकारी में ऐसा किया नहीं था। सही बात मालूम करने के लिए उन्होंने कबीर को बुलवाया। जब कबीर वहाँ पहुँचे तब रामानंदजी मानसी पूजा में लगे हुए थे और उनके चारों ओर परदा पड़ा था। इस मानसी पूजा में सभी सामग्रियाँ तो आ गई थीं, लेकिन कोई एक चीज़ कम पड़ती थी जिससे स्वामीजी को अपनी पूजा खतम करने में रुकावट मालूम होती थी। कबीरदास ने बाहर से ही कहा कि, "स्वामीजी, आपने आतमदेव को तुलसीपत्र तो चढ़ाया ही नहीं!" रामानंद को इस बात से बड़ा ताज्जुब हुआ। उन्होंने कबीर से पूछा कि "तुमको हमने कब दीक्षा दी जो तुम अपने को हमारा शिष्य बतलाते हो?" कबीर ने उस दिन का सारा वृत्तांत कह सुनाया जब कि स्वामीजी गंगा स्नान जाते समय 'राम-राम' उच्चारण कर रहे थे और कबीर उनके रास्ते में खड़े थे। स्वामीजी ने कहा कि "भला इस तरह कहीं गुरु-चेला का संबंध जुड़ता है?" कबीर साहब ने नरमी से पूछा कि "महाराज, वेद-शास्त्र में राम नाम से बढ़कर और भी कुछ बताया गया है?" स्वामीजी बोले, "नहीं, भगवान के नाम से बढ़कर शास्त्र में और कुछ भी नहीं बताया गया है।" कबीर साहब ने कहा, "फिर स्वामीजी, उससे बड़ा और क्या रहस्य है जिसे आप चेला बनाते समय बताते हैं?" स्वामीजी इस उत्तर से बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने परदा खुलवाकर कबीरदास को दर्शन दिया और उन्हें

अपना शिष्य मान लिया ।

ऐसे और भी बहुत से अवसर आए, जब कि स्वामीजी को कबीर की बुद्धि का लोहा मानकर चुप हो जाना पड़ता था । वैसे तो इस प्रकार के बहुत से चुटकुले मशहूर हैं, लेकिन उनमें से एक दिलचस्प कहानी इस प्रकार है । एक बार अपने पितरों का श्राद्ध करने के लिए स्वामीजी को गाय के दूध की जरूरत पड़ी । उन्होंने कबीरदास को दूध लाने के लिए भेजा । उन्होंने क्या किया कि एक मरी गाय के पास जाकर दूध का बर्तन रख दिया और खुद उसके मुँह के पास घास ला-लाकर रखना शुरू किया । मरी गाय भला कब दूध देने लगी और कबीरदास भी बिना दूध लिये भला कैसे लौटते ? जब बहुत देर होने लगी तो उन्होंने कुछ और चेलों को कबीरदास का पता लगाने के लिए भेजा । चेलों ने आकर स्वामीजी से सारा हाल सुनाया । स्वामीजी ने जब इस अजीब कारनामे का भेद पूछा तो कबीर साहब ने कहा कि "स्वामीजी, मैंने यह सोचा कि मरे हुए पितरों के लिए मरी गाय का ही दूध अच्छा पड़ेगा । लेकिन दूध देने को कौन कहे, वह गाय तो चारा ही नहीं खा रही है ।" स्वामीजी ने पूछा, "कहीं मरी गाय भी चारा खाती है ?" कबीर साहब ने छूटते ही कहा, "जब अभी-अभी की मरी गाय चारा नहीं खा रही है तो बरसों पहले मरे हुए पितर दूध कैसे पिएँगे जो आप उन्हें चढ़ा रहे हैं ?" स्वामीजी को कोई जवाब नहीं सूझ पड़ा ।

यह कहानी चाहे सत्य न हो, लेकिन इससे इतना पता लग जाता है कि लोगों की दृष्टि में कबीर साहब के व्यक्तित्व की तस्वीर कैसी थी । उनकी तर्कशैली बड़ी निराली और चुटकियाँ बड़ी तीखी और सधी हुई होती थीं । उनकी बानियों में जगह-जगह उनकी इस शैली की झाँकी मिलती है जिससे उनका मस्तमौलापन झलकता है । हिंदू और मुस्लिम धर्मों के ऊपरी भ्रम-जाल को ग़लत साबित करने के लिए उन्होंने ऐसी ही चुटीली बातें कही हैं । ऊपर की कहानी भी इसी तरह की है । कहते हैं, एक बार दो ब्राह्मणों में

शास्त्रार्थ हो रहा था। एक कहता था कि भगवान एक है, दूसरा कहता था दो। दोनों बहस करते हुए कबीर साहब के पास फ़ैसला कराने आए। उन्होंने उनकी बातें ध्यान से सुनीं, फिर उन दोनों से पूछा कि "परमात्मा को तुम लोग किस रंग का मानते हो—हरा, पीला, काला आदि में से उसका क्या रंग है ?" दोनों पंडितों ने जवाब दिया कि उसका कोई भी रंग नहीं है। कबीर ने फिर पूछा कि उसका रूप कैसा है—गोरा या साँवला ? उन दोनों ने जवाब दिया कि न वह गोरा ही है, न साँवला ही। कबीर ने उसके आकार के बारे में पूछा कि वह पहाड़ जैसा बड़ा है या चींटी जैसा छोटा। पंडितों ने उसके लिए भी इनकार किया। कबीर ने कहा, "भले आदमी, जब उसका कोई रूप नहीं, कोई रंग नहीं, कोई आकार-प्रकार नहीं, तब उसकी गिनती क्या होगी ? वह न एक है और न दो, लेकिन साथ ही वह अनेक में समाया भी है।"

यह कहानी भी चाहे बाद में बनाई गई हो, लेकिन कबीर साहब के स्वभाव का यह बिल्कुल ठीक ख़ाका खींचती है। उदाहरण के लिए अपने एक पद में वे इसी तरह सीधे-सादे लेकिन बड़े दिलचस्प ढंग से भक्त की महिमा इस प्रकार बताते हैं—

झगरा एक निबेरहु रांम ।
जे तुम्ह अपने जन सौं कांम ।।
ब्रह्मा बड़ा कि जिन रे उपाया ।
बेद बड़ा कि जहां ते आया ।।
यहु मन बड़ा कि जेहि मन मांनें ।
राम बड़ा कि रांमहिं जांनें ।।
कहै कबीर हौं भया उदास ।
तीरथ बड़ा कि हरि का दास ।।

कितनी सादगी से कितनी ऊँची बातें कही गई हैं।

कबीरपंथियों के अलावा दूसरे लोग भी अधिकतर स्वामी रामानंद को ही कबीर साहब का गुरु मानते हैं। लेकिन जब हम दोनों के समय का मिलान करते हैं तो इस बात को भी ठीक मानने में कुछ उलझनें पैदा होती हैं। स्वामी रामानंद का देहांत सं० १४६७ वि० में हुआ था और, जैसा कि ऊपर बताया गया, कबीर साहब का जन्म सं० १४५५ में माना जाता है। इस प्रकार स्वामीजी की जीवनलीला जब समाप्त हुई तब कबीर की अवस्था सिर्फ़ ग्यारह-बारह साल के लगभग की रही होगी। इससे दो-चार साल पहले ही अगर दीक्षा का समय माना जाय तो उनकी उम्र और भी कम ठहरती है। इतनी कम उम्र में दीक्षा लेने की बात पर सहसा विश्वास नहीं होता। इसीलिए बहुत से लोग कबीर साहब का जन्म और पीछे खींच ले जाना चाहते हैं, लेकिन ऐसा करना कहाँ तक ठीक है—यह कहना बड़ा कठिन है।

हम देखते हैं कि कबीर साहब की जन्म संबंधी कहानियों में भी रामानंदजी का नाम आता है और ऐसे ढंग से आता है मानो उन्हीं को बड़ाई देने के लिए ही वे कहानियाँ गढ़ी गई हों। स्वामी रामानंद अपने समय के सबसे बड़े महात्मा थे, लेकिन इसी से यह नहीं तय हो जाता कि उन्होंने ही कबीर को दीक्षा दी होगी। वैसे जो वाणियाँ कबीर साहब की असली जान पड़ती हैं, उनमें कहीं भी किसी ऐसे आदमी का नाम नहीं मिलता जो कि उनके समय का हो। उनका सिर्फ़ एक पद ऐसा है जिसमें **मतिसुंदर** नाम के किसी महात्मा का नाम मिलता है। उस पद की पहली कड़ी है—

मेरी मति बउरी मैं रांम बिसार्यौं, केहि बिधि रहनि रहौं रे।
सेजै रमत नैंन नींह पेखौं, यह दुख कासौं कहौं रे॥

और उसकी अन्तिम कड़ी है—

सोचि बिचारि देखौ मन मांहीं, औसर आइ बन्यौं रे।
कहै कबीर सुनहु मतिसुंदर, राना रांम रमौं रे।

वैसे इस पद में 'मतिसुंदर' का मतलब 'अच्छी बुद्धि' भी लगाया जा सकता है, लेकिन यह किसी आदमी का नाम भी हो सकता है। एक मतिसुंदर नामक संत के कुछ पद भी मिलते हैं, लेकिन यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि उन्हीं से कबीर साहब ने यह पद कहा था या किसी और से। इन दोनों का आपस में क्या संबंध था, यह भी स्पष्ट नहीं होता।

कबीर साहब की एक विशेषता यह थी कि पहुँचे हुए संत होने के साथ ही गृहस्थ भी थे और यह मानते थे कि घर-गृहस्थी में रहते हुए भी भक्ति की जा सकती है। उनकी जीवनी के बारे में जितने भी पुराने ग्रंथ मिलते हैं सब में इस बात का उल्लेख है और उनके कई पदों में भी।

अनंतदास नाम के एक बहुत पुराने संत ने "कबीर साहब की परचई" नाम से उनकी एक जीवनी सं० १६४५ के लगभग लिखी थी। उसमें उन्होंने बताया है कि कबीर साहब कपड़ा बुनकर बाज़ार में बेचने जाते थे और उसमें जो मुनाफा होता था, उससे खुद भी अपनी व अपने परिवार वालों की ज़िन्दगी बसर करते थे और भक्तों को भी खिलाते-पिलाते थे। एक दिन ऐसा हुआ कि एक गरीब ब्राह्मण बाज़ार में उनके पास पहुँचा और बड़े दीन भाव से अपना तन ढकने के लिए उनसे कपड़ा माँगने लगा। कबीर ने आधा थान फाड़कर उसे देना चाहा लेकिन उतने से उसको संतोष न था और पूरा थान दे देने के लिए उसने साग्रह विनती की। कबीर साहब को दया आ गई और उस दिन का सारा वस्त्र उन्होंने उसको दान कर दिया। दे तो दिया लेकिन घरवालों को खिलाने के लिए पास में कुछ न रहने से शर्म के मारे घर जाने की उनकी हिम्मत भी नहीं पड़ती थी। इसलिए वे आसपास कहीं लुके-छिपे बैठे रहे। घर के लोगों को भी उनकी कोई ख़बर न थी। इसी प्रकार तीन दिन बीत गए। घर के लोग भूख के मारे तड़पने लगे। उसी समय एक ऐसा अचम्भा हुआ कि एक आदमी बैल पर खाने-पीने की सारी चीज़ें लादकर ज़बरदस्ती कबीर के घर डाल गया।

नीमा को यह सब देखकर आश्चर्य हुआ, क्योंकि वे अपने लड़के का स्वभाव जानती थीं कि कोई लाख रुपया दें, लेकिन वे मस्तराम बिना परिश्रम का एक पैसा भी किसी का नहीं लेते थे। उनके पूछने पर उस आदमी ने बताया कि "विश्वनाथजी का दर्शन करने एक राजा आया हुआ है। उसने तुम्हारे बेटे पर प्रसन्न होकर उसे बहुत द्रव्य दिया, लेकिन जब उन्होंने लेने से इनकार किया तब राजा ने बड़ी विनती करके घर पर यह खाने-पीने का सामान भिजवाया है। अभी घड़ीभर बाद तुम्हारा बेटा भी आता होगा।" इतना कहकर वह आदमी बिना अपना भेद बताए चला गया और नीमा को भी विश्वास हो गया कि हो न हो यही बात सच हो। कुछ लोगों ने दौड़कर कबीर के पास भी यह खबर पहुँचाई। घर पहुँचने पर जब नीमा ने सारा हाल सुनाया तब कबीर को मन ही मन विश्वास हो गया कि दयालु परमात्मा के अलावा दूसरा कौन ऐसा कर सकता है। इस विश्वास से उनमें और आत्मबल जगा और ताना-बाना छोड़कर वे अब एकदम हरिभक्ति में रम गए। उन्होंने भक्तों को बुलाकर एक बड़ा भारी भंडारा किया और घर में जो कुछ भी था सब उन्हें खिला-पिला दिया।

यह देखकर काशी के सारे ब्राह्मण और संन्यासी डाह में जल गए और सब इकट्ठे होकर कबीर को नीचा दिखाने की तरकीब सोचने लगे। सब ने मिलकर तय किया कि इसकी नाक काटकर इसे शहर से बाहर निकाल दिया जाय। तमाशा देखने के लिए सारी काशी उमड़ चली। सबने जाकर कबीर का घर घेर लिया। कबीर ने उन सबको आदर से बिठाया और पूछा कि उन्होंने पधारने की कैसे कृपा की? ब्राह्मणों ने क्रोध में कहा, "तुम्हें आज शहर छोड़ना पड़ेगा!" कबीर ने कहा, "मुझसे ऐसी क्या चूक हुई जो आप लोग इतना क्रोध दिखा रहे हैं। न मैंने किसी का कुछ चुराया है और न किसी की इज़्ज़त पर कोई चोट की है। राम का नाम जपता हूँ और अपनी राह आता-जाता हूँ।" ब्राह्मणों ने कहा, "तुमने भोज करके

शूद्रों को तो खिलाया-पिलाया और हम लोगों को पूछा तक नहीं ? अब या तो हमें भी रसोई दो और या फिर शहर छोड़कर बाहर जाओ !" कबीरदास बड़े धर्म-संकट में पड़े, क्योंकि घर में अन्न का एक भी दाना न बचा था और उन लोगों को खिलाने से इनकार करना भी अधर्म था। फ़िलहाल सामान ले आने का बहाना करके वे वहाँ से चले गए।

कुछ समय बाद भगवान की ऐसी माया हुई कि एक आदमी जिसका नाम कहीं-कहीं केशव बनजारा दिया हुआ है, कई मजदूरों के सिर पर मैदा, चावल, शक्कर आदि की बोरियाँ रखवाए ब्राह्मणों के पास पहुँचा और सब को ढाई-ढाई सेर सीधा और पान का बीड़ा देकर उन्हें बिदा किया। सीधा पाकर ब्राह्मणों का गुस्सा पानी पानी हो गया और सब 'धन्य धन्य' कहते हुए अपने घर वापस गए। रास्ते में वे एक दूसरे से कहते जाते थे कि अब जो कबीर के खिलाफ कुछ कहेगा वही नर्क में पड़ेगा।

भगवान की महिमा अपरम्पार है। वे एक ब्राह्मण का रूप धारण कर वहाँ पहुँचे जहाँ कबीर अपना मुँह छुपाए बैठे थे और उनसे बोले कि "क्यों नहीं कबीर के घर जाते ? वहाँ बहराम लगा है और सभी ब्राह्मणों और सन्यासियों को सीधा बँटवाया जा रहा है। देखते नहीं, मैं भी तो वहीं से गठरी लिए आ रहा हूँ ?"

यह सुनकर कबीर को विश्वास हुआ कि भगवान ने उनकी लाज दुबारा रख ली। उन्होंने घर आकर देखा कि अन्न का अटार लगा हुआ है और सभी ब्राह्मण सीधा ले ले कर आशीर्वाद देते हुए वापस जा रहे हैं। कबीर ने प्रकट रूप में तो कुछ नहीं कहा लेकिन मन ही मन सोचा कि "मेरा कर्त्ता महान् है। बिना उसके मुझे कौन इतनी बड़ाई दे सकता है और कौन मुझे अपनी शरण में ले सकता है ?" इस विचार से भगवान के प्रति उनकी श्रद्धा और भी मज़बूत हो गई थी।

हो सकता है कि यह कहानी काफ़ी बढ़ा-चढ़ाकर बताई गई हो। लेकिन

इससे इतना तो मालूम ही हो जाता है कि कबीर साहब को अपने परिवार के पालन-पोषण की चिंता तो रहती ही थी, उससे भी ज्यादा चिंता उन्हें साधु-संतों की मदद करने की रहती थी। खुद तकलीफ उठाकर उन्हें आराम पहुँचाने की वे हमेशा कोशिश किया करते थे।

इस तरह की घटनाओं से जब कबीर साहब की प्रसिद्धि अधिक हुई तब उनके यहाँ लोगों की भीड़-भाड़ भी काफ़ी इकट्ठी होने लगी। भीड़भाड़ से उनको भगवान के भजन में बाधा पड़ती थी। इसलिए उससे बचने का उन्होंने एक उपाय निकाला। वे एक दिन सुबह किसी वेश्या के यहाँ गए और उसके कंधे पर हाथ रखकर बाहर सड़क पर चलने लगे। अपने साथ वे भगवान का चरणोदक भी ले गए थे जिसको शराब की तरह लोगों को दिखा-दिखाकर पीने लगे। इसी हालत में वे बाज़ार के बीच से निकले जिससे लोगों को विश्वास हो जाए कि इनका सारा ज्ञान-ध्यान चौपट हो गया है। नगर के लोगों में तहलका मच गया और सब इकट्ठा होकर उनकी हँसी उड़ाने लगे। लोग कहने लगे कि "भक्ति सभी करना चाहते हैं लेकिन नीच जाति के लोगों से भक्ति नहीं हो सकती। दस दिन कबीर ने भी भक्ति की थी लेकिन जाति का आख़िर जुलाहा ही ठहरा! अब देखो, वेश्या को साथ लिए फिरता है!" कबीर साहब इसी हालत में वहाँ के राजा के यहाँ गए। पहले जो राजा उनके आने पर बड़े आदर से उनका स्वागत करता था और सिंहासन पर बिठाता था वही यह तमाशा देखकर चकित रह गया और उन्हें सभा के बाहर ही बैठने का आदेश दिया। पूरी सभा हैरान थी कि कबीरदास जैसा भक्त भी इस तरह क्यों पतित हो गया?

उसी समय कबीर ने अपनी झारी से थोड़ा जल गिराया जिसे देखकर राजा को और भी आश्चर्य हुआ। उसने जब उसके इस व्यवहार का कारण पूछा तो कबीर ने कहा कि "कहने सुनने से किसी को विश्वास नहीं होगा। असल में जगन्नाथजी का पंडा जल गया था। उसी की रक्षा करने के लिए

मैंने यह जल गिराया था। राजा ने वह घड़ी मुहूर्त लिखकर एक आदमी को जगन्नाथ इसलिए भेजा कि वह जाकर असलियत का पता लगावे। दूत जगन्नाथ की ओर चला और उधर कबीरदास भी उठकर अपने घर आए। दस दिन बाद जब दूत जगन्नाथपुरी पहुँचा तो पूछताछ से पता लगा कि चावल पसाते समय मटका फूट जाने से सचमुच एक पंडे का हाथ जल गया था। उस पंडे ने यह भी बतलाया कि कबीर साहब ने ही जल डालकर उसे जलने से बचा लिया था। दूत को आश्चर्य हुआ। अपना संदेह दूर करने के लिए उसने पूछा कि किस कबीर की यह बात कही जा रही है? पंडे ने बताया कि यह बात उन्हीं कबीर की है जो काशी में निवास करते हैं और जो जाति के जुलाहे हैं। वे नित्यप्रति जगन्नाथजी के दर्शन के लिए आते हैं। दूत को यह सुनकर और भी अधिक आश्चर्य हुआ। काशी वापस आकर उसने राजा को सारा वृत्तांत कह सुनाया। राजा को अपनी उस दिन की अशिष्टता पर बड़ा पश्चाताप हुआ। उसने सोचा, कबीर से इस ग़लती के लिए माफ़ी माँगनी चाहिए और उन्हें किसी तरह प्रसन्न करना चाहिए। लेकिन मुश्किल यह थी कि वे किसी तरह की भेंट लेते ही नहीं थे। इसलिए राजा अपने पूरे परिवार सहित सिर पर लकड़ी का बोझा लादे और गले में कुल्हाड़ी लटकाए कबीर साहब से माफ़ी माँगने चला। उस समय माफ़ी माँगने का यही ढंग था। उन्हें इस हालत में देखकर कबीर ने तुरन्त सिर का बोझ उतार देने को कहा और बड़े आदर से बिठाया। उन्होंने यह भी कहा कि "तुम बड़े हो और असल में मुझे बड़ाई देने आए हो, क्योंकि बड़ा ही सच और झूठ का अंतर समझता है। मूर्ख क्या समझेगा?" इस प्रकार कबीर जितना ही अपने गुणों को छिपाने की कोशिश करते थे उतनी ही अधिक उनकी कीर्ति बढ़ती जाती थी।

ऊपर की कहानी में जगन्नाथजी के पंडे की घटना यद्यपि विश्वसनीय नहीं लगती लेकिन दिव्य दृष्टि वाले महात्माओं के लिए यह असंभव भी

नहीं कहा जा सकता। गणिका वाली घटना अवश्य ही सही हो सकती है, क्योंकि कबीर साहब के स्वभाव में जो मस्तमौलापन था उसी की पुष्टि इस कहानी से भी होती है। अधिकांश कबीरपंथी ग्रंथों में इन दोनों घटनाओं की चर्चा बहुत कम मिलती है, लेकिन वेश्या के कंधे पर हाथ रखकर चलने का जिक्र धर्मदास साहब ने भी अपनी 'शब्दावली' में किया है।

कबीर साहब की बढ़ती हुई इज्ज़त देखकर ब्राह्मण और काज़ी ईर्ष्या से जलने लगे और उनको नीचा दिखाने की तरकीब बराबर सोचते रहते थे। इसी समय काशी में सिकंदर शाह का आगमन हुआ जो लोदी वंश का सुलतान था और जो उस समय दिल्ली के तख्त पर विराजमान था। बादशाह को कुछ समय से दाहरोग बहुत दुःख दे रहा था। उसके शरीर में गर्मी उठती थी जिससे वह रातदिन बेचैन रहा करता था। तमाम हकीम और वैद्य उसकी दवा कर चुके थे, लेकिन अभी तक उसके रोग में रत्तीभर भी कमी नहीं हुई थी। कहते हैं कि लोगों ने उससे स्वामी रामानंद और कबीर साहब की अचरज भरी करामातों के बारे में बता रखा था इसीलिए वह काशी आया था। वहाँ पहुँच कर वह स्वामी रामानंद के दर्शन करने गया लेकिन स्वामीजी का नियम था कि वे म्लेच्छों का मुख कभी नहीं देखते थे और न उन्हें दर्शन ही देते थे। इसीलिए वे अपने चारों ओर परदा डलवा रखते थे। वहाँ से निराश होकर वह कबीर साहब के पास गया और उनका दर्शन करते ही उसका दाहरोग मिट गया जिससे वह उनका बड़ा ही मुरीद हुआ और उनके पैरों पर गिर पड़ा। कबीर साहब के कहने से वह फिर रामानंदजी के पास गया और उन्हीं की सिफ़ारिश पर स्वामीजी ने उसे दर्शन भी दिया। इस घटना के बाद बादशाह कबीर साहब की बड़ी इज्ज़त करने लगा, जिसे देखकर उसका पीर अर्थात् गुरु शेख़ तक़ी डाह में जल गया। उसने सोचा कि अगर बादशाह ने इस हिन्दू फ़कीर को ही कहीं अपना गुरु मान लिया तो फिर एक म्यान में दो तलवारें कैसे रह सकती हैं? ऐसा सोचकर वह कबीर

का जड़मूल से सफ़ाया करने की तरकीब सोचने लगा। उसी समय काशी के काज़ी, मौलवी, फ़कीर वगैरह मिलकर कबीर की शिकायत करने के लिए शेख़ तक़ी के पास पहुँचे।

अनंतदास ने अपनी 'परचई' में बादशाह सिकंदर के काशी आने की बात तो लिखी है, लेकिन न तो उसके रोग का ज़िक्र किया है और न उसके साथ शेख़ तक़ी का ही कोई ज़िक्र किया है। उन्होंने यह बतलाया है कि सिकंदर शाह के आते ही काज़ी, मुल्ला और ब्राह्मण, बनिया सभी कबीर की शिकायत के लिए उसके पास गये और बोले कि "ऐ शाह, तुम महान् हो। हमारा दुःख दूर करो। एक जुलाहे ने बड़ा ही तूफ़ान खड़ा कर रखा है। उसने मुसलमानों के रीति-रस्म छोड़ दिए हैं और हिंदुओं के भी धर्म की निंदा वह करता है। वह तीर्थ और वेद की निंदा करता है, शंकर, शारदा और गणेश की निंदा करता है। ब्राह्मणों की और एकादशी व्रत आदि की निंदा करता है। हिंदू और तुर्क दोनों से अलग होकर उसने अपनी निराली रीति चलाई है। वह ख़ुद ख़ुदा बनने का दावा करता है। यह जुलाहा जब तक काशी में रहेगा तब तक न कोई काज़ी को पूछेगा और न पंडित को। इसलिए आप इसे नगर के बाहर निकालें। आप ही हमारे पिता और माता हैं; इसलिए हमारी रक्षा करें।" बादशाह ने तुरंत ही दोनों छड़ीदार भेजकर कबीर साहब को बुलवाया। काज़ी ने कबीर साहब से बादशाह को सलाम करने के लिए कहा, लेकिन कबीर ने वैसा नहीं किया। इससे बादशाह को ग़ुस्सा आया। उसने पूछा, "क्यों रे जुलाहे, क्यों अपना दीन छोड़कर बदराह चल रहा है?" कबीर ने शीतल वाणी में जवाब दिया, "मुझे हिंदुओं और तुर्कों से कुछ लेना देना नहीं। गुरु के प्रताप से राम की भक्ति करता हूँ, उसी के गुन गाता हूँ। राम के भरोसे मैं राजा या रंक किसी से भी नहीं डरता और न बादशाह से ही डरता हूँ।"

काज़ी ने फ़ैसला किया कि "इस्लाम की निंदा करने के कारण कबीर

25776
Date 10.9.68

काफ़िर है। उसकी माला छीनकर और तिलक मिटाकर उसे पत्थरों से दे मारो।"

कबीर ने कहा, "काफ़िर तुम हो। किस क़तेब में गोकशी करने और बकरी, मुर्गी काटने की आज्ञा दी गई है? जीवघातियों की सज़ा यमराज उनकी छाती तुड़वाकर देता है। मुझे राम नाम का पूरा भरोसा है, मुझे किसी का भय नहीं।"

इतना सुनते ही बादशाह शेर की तरह तड़प उठा और उसने कबीर साहब के हाथ पैर जंज़ीर से बँधवाकर गंगा में फेंक देने का हुक्म दिया। जल्लाद ने वैसा ही किया। लेकिन कबीरदास ने अपने कर्ता को याद किया जिसका करिश्मा यह हुआ कि उनकी जंज़ीरें टूट गईं और वे जल के ऊपर इस तरह बैठ गए जैसे कोई चौकी पर बैठता है!

कुछ ग्रंथों में ऐसा भी ज़िक्र आता है कि बादशाह ने कबीर साहब की परीक्षा के लिए एक गाय का वध करा दिया और उनसे कहा कि "अगर तुम ख़ुदा के बराबर हो तो इस गाय को जिला दो।" कबीर साहब के स्पर्श करते ही गोमाता जीवित हो गईं। लेकिन इसी तरह की दास्तान नामदेव के बारे में भी मशहूर है और, हो न हो, वही दास्तान लोगों ने कबीर साहब की जीवनी के साथ भी जोड़ दिया।

जब कबीर साहब पानी में न डबे तो लोगों ने शिकायत की कि वह कोई जादू जानता है या उसे कुछ तंत्र का ज़ोर है। दूसरी बार उसके हाथ पैर बाँधकर एक घर के अंदर फेंक दिया गया और उसमें चारों ओर से आग लगा दी गई। भगवान ने वहाँ भी उनकी रक्षा की। मकान जलकर ख़ाक हो गया और उसकी राख हवा में उड़ गई, लेकिन कबीर साहब का बाल भी बाँका न हुआ।

कबीर को प्रह्लाद की जोड़ का भक्त माना जाता है। प्रह्लाद को मारने

के लिए होलिका जलाई गई थी। इसीलिए शायद कबीर साहब की भी ऐसी ही परीक्षा ली गई जिसमें वे खरे साबित हुए।

सिकंदर ने सोचा कि अवश्य ही यह जुलाहा कुछ नाटक-चेटक जानता है। इसलिए इस बार उसने उनका हाथ पैर बँधवाकर मदमस्त हाथी के सामने डलवा दिया। वह हाथी ऐसा था कि अपनी छाया को ही कोई जीव समझकर कुचलता आता था। महावत को तो वह कुछ गिनता ही न था। लड़ाई में उसने बड़े-बड़े बहादुरों को कुचल डाला था और उसका नाम 'रणजीत' रखा गया था। ऐसा बिगड़ैल हाथी कबीर साहब के लिए छोड़ दिया गया। उसके डर के मारे सब लोग दूर भाग चले। लेकिन एक ऐसा अचम्भा हुआ कि कबीर साहब के पास जाकर वह एकदम रुक गया और डरकर भागा। असल में कबीर साहब की जगह उसे एक शेर दिखाई पड़ा। कबीरदास ने तीनों लोगों के मालिक राम की शरण ली और राम ने मस्त हाथी से भी उनकी रक्षा की।

कहते हैं, शेख़ तक़ी और बादशाह सिकंदर ने कबीर साहब की बावन बार इसी प्रकार कसनी या परीक्षा ली। लेकिन जब वे हर एक से साबित बच गए तो उन्होंने हार मान ली और हाथ जोड़कर कबीर साहब से माफ़ी माँगी।

संत समाज में बहुत पुराने ज़माने से यह विश्वास किया जाता रहा है कि कबीर साहब सिकंदर लोदी के समय में थे और दोनों से मुलाक़ात भी हुई थी। इतना ही नहीं, ऊपर बयान की हुई सज़ाओं में से कम से कम तीन की चर्चा सभी ने की है—पानी में डुबाए जाने की, जलती आग में फिंकवाए जाने की और हाथी द्वारा कुचलवाए जाने की। प्रियादास जी ने भक्तमाल की टीका में इन घटनाओं का ज़िक्र इस तरह किया है—

देखि कै प्रभाव फेरि उपज्यौ अभाव द्विज।
आयौ बादशाह जू सिकंदर सो नाँव है॥

विमुख समूह संग माता हू मिलाइ लई ।
आइ के पुकारै जू दुखायौ सब गाँव है ।।
लाओ रे पकरि वाको देखौं रे मकर कैसो ।
अकर मिटाऊँ गाढ़े जाकर तनाव है ।।
आनि ठाढ़े किये काजी कहत सलाम करौ ।
जानै न सलाम जामैं राम गाढ़े पाव है ।।

इसके बाद ऊपर की तीन सज़ाओं का ज़िक्र है । संत दादूदयाल के शिष्य रज्जबजी ने भी कहा है—

जन कबीर जड़ि जंजीर बोरे जल मांहीं ।
अग्नि नीर गज त्रास राखे किधौं नांहीं ।।

इसी तरह गरीबदास साहब (छुडानी, जि० रोहतक वाले) ने भी अपने 'ग्रंथ साहब' में इनका ज़िक्र किया है । और सबसे बड़ी बात है कि खुद कबीर साहब के ही दो पद ऐसे मिलते हैं जिनमें गंगा में डुबोए जाने और हाथी के नीचे कुचलवाए जाने का वर्णन है । वे इस प्रकार हैं—

गंगा में फेंका जाना—

मन न डिगै तनु काहे कौ डेराइ ।
चरन कमल चितु रह्यौ समाइ ।।
गंग गुसाइनि गहिर गंभीर । जंजीर बांधि करि खरे कबीर ।।
गंगा की लहरि मेरी टुटी जंजीर । भ्रिगछाला पर बैठे कबीर ।।
कहै कबीर कोई संग न साथ । जल थल में राखै रघुनाथ ।।

हाथी के आगे फेंका जाना—

आहि मेरे ठाकुर तुम्हरा जोर ।
काजी बाकिबो हस्ती तोर ।।
भुजा बांधि मिला करि डारयौ ।

हस्ती कोपि मूंड़ महिं मारयौ ।।
भाग्यौ हस्ती चीसा मारी ।
या मूरति की हौं बलिहारी ।।
रे महावत तुझु डारउं काटि ।
इसहिं तुरावहु घालहु सांटि ।।
हस्ती न तोरै धरै धियांन ।
वाके हृदै वसै भगवान ।।
क्या अपराध संत है कीन्हां ।
बांधि पोटि कुंजर कौं दीन्हां ।।
कुंजर पोट बहु बंदन करै ।
अजहूं न सूझै काजी अंधरै ।।
तीनि बेर पतियारा लीन्हां ।
मन कठोर अजहूं न पतीना ।।
कहै कबीर हमरा गोबिंद ।
चउथे पद महिं जन की जिंद ।।

एक तीसरे पद में आग में जलाए जाने का इशारा भी मिलता है—

राम जपत तनु जरि किन जाइ ।
रांम नांम चितु रह्यौ समाइ ।।
आपहिं पावक आपहिं पवनां ।
जारै खसम त राखै कवनां ।।
काको जरै काहि होइ हांनि ।
नटबिधि खेलै सारंगपांनि ।।
कहै कबीर अक्खर दुइ भाखि ।
होइगा खसम त लेइगा राखि ।।

एक खास बात यह है कि ये पद इतनी पुरानी पोथियों में मिलते हैं और

ऐसे हैं कि इन्हें कबीर के असली पद मानने से इनकार भी नहीं किया जा सकता। इसलिए इन तीनों घटनाओं में काफ़ी सच्चाई मालूम पड़ती है। बीच वाले पद में 'तीन बेर पतियारा लीन्हां' से ऐसा साफ़ ज़ाहिर होता है कि कबीर साहब की तीन कठिन परीक्षाएँ ज़रूर ली गईं थीं। हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि कबीर साहब इसी कसौटी के बाद भारत भर में मशहूर हुए और उनका असर बाद के हर एक संत पर पड़ा। केवल बातों से ही कोई आदमी इतना मशहूर नहीं हो सकता—कुछ कर दिखाना ज़रूरी होता है। इतना ज़रूर है कि आज बीसवीं शताब्दी में इन घटनाओं पर विश्वास करने वाले बहुत कम लोग मिलेंगे। लेकिन यह भी मानना पड़ेगा कि अब तक हमने अपनी बहुत-सी आध्यात्मिक पूंजी खो दी है। कबीर साहब महान् योगी और संत थे। उनकी साधना इतनी ऊँची श्रेणी की थी कि मिट्टी, पानी, आग वगैरह का उनके ऊपर कोई असर न हो पाना नामुमकिन नहीं कहा जा सकता। आज भी न जाने कितने महात्मा शेर-चीतों के बीच निर्जन वन में पड़े रहते हैं। उनकी कौन रक्षा करता है? इसलिए कबीर जैसे समदर्शी महात्मा के लिए यह घटनाएँ असंभव नहीं मानी जा सकतीं।

लेकिन यह दावे के साथ नहीं कहा जा सकता कि उनके ऊपर ये सारे जुल्म सिकंदर लोदी ने ही किए थे। कबीर साहब सिकंदर लोदी के समय में थे—ऐसा मानने में भी अड़चनें हैं। सिकंदर ने सं० १५४५ से १५७५ तक राज्य किया था और इतिहास लिखने वालों का यह भी कहना है कि वह सं० १५५१ वि० में काशी आया था। जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे, शायद सं० १५५१ के बहुत पहले सं० १५०५ में ही कबीर साहब की इह-लीला समाप्त हो गई थी। वैसे कुछ लोग सं० १५७५ में भी कबीर का देहांत मानते हैं, लेकिन अगर ऐसा मान भी लिया जाए तो भी इतिहास में इस बात के सबूत कहीं नहीं मिलते कि उनसे सिकंदर लोदी की मुलाक़ात कभी हुई थी। वह हिंदुओं पर जुल्म करने के लिए मशहूर था। शायद

इसीलिए कबीर साहब की जीवनी लिखने वाले पुराने लेखकों ने इन जुल्मों की ज़िम्मेदारी उसी के मत्थे मढ़ दी हो। जनता में कुछ बातों का जोड़ बड़े अजीब ढंग से बिठा लिया जाता है। बहुत से कबीर पंथी ग्रंथों में तो सिकंदर लोदी को सिकंदर महान् भी समझ लिया गया है। सिकंदर महान् की एक उपाधि 'जुलकरनैन' है जिसका मतलब लोग तरह-तरह से लगाया करते हैं। यूनानी लोग दो सींगों वाला टोप पहनते थे, इसलिए कुछ लोग इसका मतलब 'दो सींगों वाला' लगाते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि उसने पूर्व और पश्चिम दोनों दिशाओं को जीत लिया था, इसलिए उसका यह नाम पड़ा और कुछ लोग उसे दो सितारों वाला या भाग्यशाली मानते हैं। लेकिन 'कमालबोध' नामक एक कबीरपंथी ग्रंथ में उसका मतलब किया गया है—'जुलाहे का किया गया या बनाया हुआ।' मतलब यह कि कबीर जुलाहे ने चूंकि उसे उपदेश दिया था इसलिए वह 'जुलकरनैन' हुआ—

भये मुरीद जुलहा के आई।
तबही जुलकरन नाम धराई॥

सिकंदर शाह के प्रसंग में जिन शेख़ तक़ी का ज़िक्र आया है उन्हें पहले बहुत से लोग भूल से कबीर साहब का पीर या गुरु मानते थे। इसकी शुरूआत शायद मौलाना ग़ुलाम 'सरवर' साहब से हुई जिन्होंने अपनी पुस्तक 'ख़ज़ीनतुल असफ़िया' में एक जगह पर लिखा कि "शेख़ कबीर जुलाहा शेख़ तक़ी के चेले थे। वे पहले आदमी थे जिन्होंने परमात्मा और उसके वजूद के बारे में हिंदी में लिखा। मज़हबी सहनशीलता के कारण हिंदू और मुसलमान दोनों ने उन्हें अपना नेता माना। हिन्दुओं ने भगत और मुसलमानों ने उन्हें पीर कहा। उनकी मृत्यु सन् १५९४ ई० (सं० १६५१ वि०' में हुई और उनके पीर शेख़ तक़ी सन् १५७५ ई० (सं० १६३२ वि०) में मरे थे।" इन बातों से साफ़ ज़ाहिर है कि 'सरवर' साहब इन्हीं कबीर साहब का ज़िक्र यहाँ कर रहे हैं, लेकिन उन्होंने उनके मरने का जो समय

बतलाया है उससे ऐसा जान पड़ता है कि शेख़ कबीर कोई बाद के सूफ़ी संत थे जिनको भूल से उन्होंने काशी वाले कबीर के साथ मिला दिया है।

असल में शेख़ तक़ी की चर्चा कबीर साहब के साथ इसलिए शुरू हुई है कि 'कबीर बीजक' में, जिसे कबीर पंथी लोग कबीर साहब की बानियों का असली गुटका मानते हैं, दो जगहों पर उनका नाम आता है। एक बार तो उसकी ४८ वीं रमैनी में कहा गया है—

मानिकपूर कबीर बसेरी। मद्दति सुनी शेख तकि केरी ।

जिससे जान पड़ता है कि जब कबीर साहब मानिकपुर गए तो उन्होंने किसी शेख़ तक़ी की बहुत तारीफ़ सुनी। इसके बाद ६३ वीं रमैनी में एक दोहा इस तरह मिलता है—

नाना नाच नचाय के, नाचै नट के भेख।
घट घट अबिनासी अहै, सुनहु तकी तुम सेख ।।

जिससे जान पड़ता है कि वे शेख़ तक़ी को अपने ब्रह्म के बारे में समझा रहे हैं। इससे यह भी जान पड़ता है कि दोनों महात्माओं की मुलाक़ात भी हुई थी। लेकिन इधर लोगों ने यह साबित कर दिया है कि बीजक का गुटका कबीर साहब के देहांत के बहुत समय बाद तैयार हुआ होगा और ऐसा मानना ज़रूरी नहीं रह गया है, कि उसमें जितनी बानियां मिलती हैं सभी कबीर साहब की असली रचनाएँ ही हैं। उसमें असली रचनाओं के साथ बाद की मिलावट भी काफ़ी है। इसलिए पहली बात तो यह है कि 'बीजक' को आधार बनाकर कबीर साहब की जीवनी के बारे में कोई बात पूरे दावे के साथ नहीं कही जा सकती। दूसरी बात यह है कि इतिहास से भी ऐसे किन्हीं शेख़ तक़ी का पता नहीं चलता जिन्हें कबीर साहब के समय का माना जाए या जिन्हें उनका पीर माना जाए। शेख़ तक़ी नाम के दो सूफ़ी पीर मशहूर हैं। उनमें से एक कड़े-मानिकपुर के थे, और दूसरे इलाहाबाद के पास

झूंसी के रहने वाले थे। इनमें से पहले का देहांत कबीर साहब के देहांत के लगभग सौ वर्ष बाद हुआ था और दूसरे का देहांत उनके पैदा होने के लगभग सौ वर्ष पहले ही हो चुका था। इस हालत में उन्हें कबीर साहब का समकालीन कैसे माना जा सकता है? ऐसा लगता है कि बीजक की वे रमैनियाँ, जिनकी चर्चा ऊपर की गई है, बाद में किसी के ज़रिए कबीर साहब की असली बानियों में मिला दी गई हैं। अगर उन्हें ठीक मान भी लिया जाए तो भी उनमें ऐसी कोई बात नहीं मिलती जिससे यह जान पड़े कि शेख़ तक़ी कबीर साहब के गुरु या पीर थे। अधिक से अधिक दोनों को एक समय का माना जा सकता है।

जो भी हो, 'निर्भय ज्ञान', 'अनुरागसागर' आदि कबीरपंथी ग्रंथों में शेख तक़ी और कबीर साहब के बारे में बहुत-सी कहानियाँ दी गई हैं। कहा जाता है कि शेख़ तक़ी ने उनकी बावन बार परीक्षा ली थी जिन्हें 'बावन कसनी' कहा गया है। इनमें से कुछ का दास्तान पहले दिया जा चुका है, लेकिन दो वृत्तांत ऐसे और भी हैं जिनकी चर्चा यहाँ कर देना जरूरी है। ये दोनों दास्तान कमाल और कमाली को जिंदा कर देने के बारे में हैं।

कहते हैं कि जब सिकंदर लोदी ने कबीर साहब के बहुत से करिश्में अपनी आँखों से देखे तो उसे विश्वास हो गया कि वे एक पहुँचे हुए महात्मा हैं। जब वह दिल्ली के लिए कूच करने लगा तो उसने कबीर साहब से भी साथ चलने की प्रार्थना की। उन्होंने साथ चलना स्वीकार किया तो सिकंदर ने अपना सबसे सुंदर हाथी सजाकर उनकी सवारी के लिए दिया। प्रयागराज में त्रिवेणी तट पर आकर सुलतान ने अपनी फ़ौज को पड़ाव डालने का हुक्म दिया। खा-पीकर जब सब लोग महफ़िल में बैठे थे और कबीर साहब का उपदेश चल रहा था तभी संयोग से ऐसी घटना घटी कि गंगाजी में एक छोटे बच्चे का मुर्दा पश्चिम से पूर्व दिशा की ओर बहता हुआ दिखाई पड़ा। उस मुर्दे की ओर इशारा करते हुए शेख़ तक़ी ने बादशाह से कहा कि

"जहाँपनाह, कबीर साहब ख़ुदा होने का दावा करते हैं। अगर सचमुच ऐसा है तो वे इस मुर्दे को जिंदा भी कर सकते हैं। अगर वे ऐसा कर सकें तो हम लोगों को भी यक़ीन हो जाए कि वे सचमुच ख़ुदा हैं।" ऐसा सुनकर कबीर साहब ने अपना हाथ ऊँचाकर मुर्दे को अपनी ओर आने का इशारा किया। सब लोगों ने देखा कि वह मुर्दा उसी ओर तेज़ी से बढ़ता हुआ आकर उनके सामने रुक या। कबीर साहब ने परमात्मा का ध्यान किया और कहा कि "इस मुर्दे की रुह फिर आकर इसी शरीर में समा जाए!" सब लोगों ने देखा कि कबीर साहब के हाथ से एक उजाला निकल कर मुर्दे में समा गया और वह जीवित हो गया। जल में से निकल कर उसने कबीर साहब के चरणों में अपना सिर रख दिया। इस चमत्कार को देखकर सिकंदर के मुख से निकला "वाह, आपने तो कमाल किया!" कबीर साहब ने कहा "आपने इसे 'कमाल' कहा, इसलिए यह बच्चा इसी नाम से मशहूर होगा।"

बादशाह सिकंदर ने जब इस बच्चे से पूर्व जन्म की कथा सुनने की इच्छा ज़ाहिर की तो कबीर ने उसकी ओर इशारा करते हुए कहा कि 'ऐ कमाल, तुम अपने पहले जन्म की कहानी भी सुना जाओ।' बच्चा बोला, 'आज से कुछ बरस पहले मैं उत्तरखंड में एक ब्राह्मण के घर पैदा हुआ था। मेरी एक बहन भी थी। हम दोनों पहले जन्म के संस्कार से हिमालय पर तप करने चले गए। हमारी तपस्या से प्रसन्न होकर कबीर साहब ने हमें दर्शन दिया। हमने उनसे आत्मज्ञान देने की प्रार्थना की तब उन्होंने सिर्फ़ इतना कहा था कि उचित समय आ जाने पर वैसा ही होगा। थोड़े दिनों बाद मेरी मृत्यु हो गई और परिवार के लोगों ने मुझे गंगाजी में फेंक दिया। इसके बाद जो हुआ उसे आप लोग देख ही रहे हैं।" उस बच्चे ने यह भी बताया कि उसे पूर्व जन्म की याद कबीर साहब के ही आशीर्वाद से है। इस घटना से शेख़ तक़ी बहुत लज्जित हुआ। आगे चलकर यही लड़का कबीर साहब का

प्रधान शिष्य हुआ।

बहुत से लोग कमाल को कबीर साहब का सगा लड़का मानते हैं और इसके सबूत में 'श्री गुरु ग्रंथ साहब' का यह दोहा भी पेश करते हैं—

बूड़ा बंस कबीर का, उपज्यौ पूत कमाल।
हरि का सुमिरन छांड़िके, घर ले आया माल॥

लेकिन संत-समाज में गुरु आध्यात्मिक पिता माना जाता है, अतः चेला लड़का भी कहा जाता है। हो सकता है कि कबीर साहब के शिष्य कमाल बाद में कभी गृहस्थी जोड़ने के चक्कर में भी पड़े हों और तभी से यह कहावत चल पड़ी हो। इस दोहे को पढ़कर ऐसा मालूम होता है कि कोई तीसरा आदमी कबीर और कमाल के बारे में कुछ कह रहा है। जैसा पहले बताया गया, इस तरह की बहुत सी रचनाएँ बाद में कबीर साहब के नाम से चला दी गई। यह दोहा भी ऐसा ही जान पड़ता है।

इसी तरह की कहानी कमाली की भी है। एक बार सुलतान सिकंदर लोदी का दरबार लगा हुआ था और कबीर साहब का ज्ञानोपदेश चल रहा था कि उसी समय शेख तक़ी भी दरबार में हाज़िर हुए। वे बहुत रंजीदा थे, क्योंकि थोड़े ही दिन पहले उनकी लड़की मर गई थी। उन्होंने दरबार में खड़े होकर कहा कि गंगा में जो मुर्दा कबीर साहब ने ज़िंदा कर दिया था उसमें कोई ख़ास बात नहीं थी। कभी कभी लोगों की जान खोपड़ी में समाई रहती है और सारा शरीर सुन्न हो जाता है। कुछ तदबीर करने पर ऐसे मुर्दे को जिलाया जा सकता है। मेरी बेटी क़ब्र में दफ़ना दी गई है। अगर कबीर साहब उसे जिला दें तो मैं उनका हमेशा के लिए मुरीद हो जाऊँ। कबीर साहब ने उस क़ब्र से मिट्टी पत्थर हटवाने के लिए हुक्म दिया। जब लड़की का शव दिखलाई देने लगा तब उन्होंने उससे कहा, 'ऐ शेख तक़ी की बेटी, उठ!' इसी तरह तीन बार पुकारने पर भी जब उसका शव ज़रा भी नहीं सगमगाया तब लोग कबीर साहब की हँसी उड़ाने

लगे। आखिरकार कबीर साहब ने जब उससे यह कहा कि 'ऐ कबीर की बेटी, अब तू उठ जा!' तब वह फ़ौरन उठकर कबीर साहब के पैरों पर पड़ गई। कबीर साहब ने उसका नाम 'कमाली' रखा और कमाली ने भी उन्हें हमेशा अपने पिता की तरह माना। इस घटना के बाद शेख तक़ी का हृदय पसीज गया और उसने कबीर साहब से अपनी ग़लतियों के लिए माफ़ी माँगी। कमाली ने शेख तक़ी के पास रहना मंजूर नहीं किया और अपनी बाक़ी ज़िंदगी कबीर साहब के पास ही उनके पालनपोषण में गुज़ारी।

कमाल और कमाली को जिला देने के चमत्कार का दास्तान सिर्फ़ कबीरपंथी ग्रंथों में ही नहीं मिलता बल्कि गरीबदास साहब वगैरह दूसरे संतों ने भी अपनी रचनाओं में इसका ज़िक्र किया है। लेकिन अनंतदास ने अपनी 'परचई' में कमाल और कमाली का ज़िक्र बिलकुल नहीं किया है। इसलिए हो सकता है कि ये लोग भी धरमदास की तरह बहुत बाद में हुए हों लेकिन कबीर साहब के उपदेशों पर चलने के कारण इनकी भी गिनती उसी तरह कबीर के शिष्यों में होने लगी हो जैसे धरमदास की होती है। इतना ज़रूर कहा जा सकता है कि वे कबीर साहब के लड़के-लड़की बिलकुल ही नहीं माने जा सकते। अगर वे उनके समय में रहे भी होंगे तो असल में उनके चेले-चेली के रूप में रहे होंगे।

जो लोग कमाल और कमाली को कबीर साहब का लड़का और लड़की मानते हैं, वे कबीर साहब के विवाह की भी बात बताते हैं। उनका कहना है कि लोई नाम की एक स्त्री से उनका विवाह हुआ था और उसी से कमाल-कमाली पैदा हुए थे। कबीर और लोई का रिश्ता कैसे जुड़ा-इसकी भी एक दिलचस्प कहानी बताई जाती है। गंगा के पार सुनसान में एक बनखंडी महात्मा रहा करते थे। वे एक दिन गंगा तट पर स्नान करने को गये तो क्या देखते हैं कि एक लड़की कम्बल में लिपटी हुई गंगा की धारा के साथ

वहीं जा रही है। महात्मा को दया आ गई। उन्होंने उसे धारा से बाहर निकालकर और अपनी कुटिया में ले जाकर उसका पालन-पोषण किया। यह लड़की लोई में लिपटी हुई मिली थी इसलिए महात्माजी ने इसका नाम 'लोई' ही रख दिया। वह जब सयानी हुई तो एक बार ऐसा हुआ कि कबीर साहब टहलते-घूमते उधर जा निकले। थोड़ी हीदेर में दो-चार महात्मा वहाँ और आ गए। वनखंडी बाबा उस समय कहीं गए हुए थे, अतः लोई ने ही इन महात्माओं का आदर-सत्कार किया। उसने इन्हें अपनी कुटिया में ले जाकर एक-एक प्याला दूध पीने के लिए दिया। लेकिन कबीर साहब ने अपने हिस्से का दूध ज़मीन पर रख दिया। जब लड़की ने उनसे दूध न पीने का कारण पूछा तो उन्होंने कहा, "मैं शब्द का आहार करता हूँ। यह दूध मैंने इसलिए रख लिया है कि एक और साधू अभी गंगापार से आ रहा है।" थोड़ी ही देर बाद सब लोगों को यह देखकर बड़ा अचम्भा हुआ कि एक साधू सचमुच आ गया। कबीर साहब की शक्ति और चमत्कार पर वह लड़की मुग्ध हो गई और जब वे वहाँ से चलने लगे तो उसने भी उनके साथ चलने की प्रार्थना की। कबीर साहब ने उसे साथ ले जाना मंजूर कर लिया। आगे चलकर उसने उन्हीं के साथ विवाह भी कर लिया और उनकी अर्धांगिनी बनकर उनकी सेवा करने लगी।

कुछ कबीरपंथी ग्रंथों में यह बताया गया है कि लोई असल में उनकी पत्नी नहीं, बल्कि शिष्या थी। उनका कहना है कि बनखंडी बाबा ने जब अपना अंतिम समय नज़दीक आया हुआ समझा तो लोई को अपने पास बुलाकर कहा कि "बेटी, मैं अब तुझसे अलग हो रहा हूँ। एक महात्मा यहाँ ऐसे आवेंगे जो तेरे सब सवालों का जवाब एक ही तरह से देंगे। जब तक वे न आ जाएँ, तू यहीं पर रहना।" इतना कहने के साथ ही उनके प्राण-पखेरू उड़ गए। लोई उस जंगल में अकेली रहने लगी और जो भी महात्मा उधर से गुज़रते उनसे वह उनका नाम, जाति, पंथ आदि पूछा

करती। इस तरह कुछ दिन बीत गए तब एक बार दो महात्मा उसकी कुटिया के पास आए। लोई ने उनका आदर-सत्कार किया और दोने में दूध लाकर सामने रख दिया। एक महात्मा ने तो दूध पी लिया लेकिन दूसरे ने यह कहकर उसे रख दिया कि अभी एक संत और वहाँ आ रहे हैं। लोई को आश्चर्य हुआ और उसने इन महात्मा का नाम पूछा। जवाब मिला—"कबीर।" लोई ने उनकी जाति पूछी तब भी जवाब मिला—"कबीर"। उसने जब तीसरी बार उनका पंथ पूछा तो उसका भी जवाब मिला—"कबीर"। लोई को महात्मा की कही हुई बात याद आ गई। उसने उनसे प्रार्थना की—"महाराज, मुझे अपनी शरण में ले लीजिए।" कबीर ने कहा, "चलो बेटी, परमात्मा का भजन करो।"

लेकिन लोई की कहानी का जो भारी-भरकम ढाँचा खड़ा किया गया है उसकी जड़ में एक भूल मालूम होती है। असल में अपने कुछ पदों में कबीर साहब ने इस शब्द का ऐसा इस्तेमाल किया है कि लोग उसका ठीक मतलब न समझ सके और मनमानी कहानी गढ़ने लगे। उन्होंने "सुनी रे लोई" या "सुनो नर लोई" इस तरह के शब्द अपने कई पदों में कहे हैं; जैसे—

कहत कबीर सुनहु रे लोई,
हम न किसी के न हमरा कोई ।।

या—

जेहि हित कै राखा सब लोई,
सो सयान बांचा नहिं कोई ।।

या—

कहत कबीर सुनहुरे लोई भरमि परौ जनि कोई।

असल में संस्कृत का 'लोक' शब्द, बाद में चलकर 'लोय' या 'लोइ' हो गया और वही आजकल 'लोग' हो गया है। कबीर साहब के ज़माने में जब कहा

जाता था—"सुनो रे लोई", तो आजकल की बोलचाल में उसका सीधा मतलब हुआ—"सुनो रे लोगो!" लोगों ने समझा कि यह किसी स्त्री का नाम है जिससे कबीर साहब कुछ कहा करते हैं और फिर किसी लाल-बुझक्कड़ ने एक अच्छी-ख़ासी कहानी भी लोई के बारे में गढ़ डाली। बाद में कबीरपंथियों ने जब देखा होगा कि कबीर साहब के बारे में यह अनर्थ किया जा रहा है तो उन्होंने इस कहानी में कुछ ऐसे फेर-बदल करने की कोशिश की जिससे लोई को कबीर साहब की शिष्या मान लिया जाय। वैसे इसकी चर्चा न तो अनंतदास की 'परचई' में है और न किसी दूसरी ही पुरानी जीवनी में। कबीर साहब की जितनी असली जान पड़ने वाली बानी है उसमें कहीं भी 'लोई' शब्द का इस्तेमाल ऐसे ढंग से नहीं हुआ है जिससे यह उनकी या किसी दूसरे की स्त्री का नाम जान पड़े।

कुछ लोग तो यह भी मानते हैं कि लोई के अलावा कबीर साहब की एक स्त्री और भी थी जिसका नाम 'धनियाँ' था और जिसे कभी कभी लोग 'रमजनियाँ' भी कहते थे। बात यह है कि सिक्खों के "श्री गुरुग्रंथ साहब' में कबीर साहब के भी कुछ पद इकट्ठे किए गए हैं जिनमें से दो पद इस तरह के भी हैं—

पहला—

मेरी बहुरिया को धनिया नाउ।
ले राखिओ रामजनिआ नाउ॥
इन्ह मुंडिअन मेरा घर धुंधरावा।
बिटवहि राम रमऊआ लावा॥
कहतु कबीर सुनहु मेरी माई।
इन मुंडीअन मेरी जाति गंवाई॥

दूसरा—

पहिली कुरुपि कुजाति कुलखनी साहुरै पेईऐ बुरी।

अब की सरूपि सुजानि सुलखनी सहजे उदरि धरी ।।
भली सरी मुई मेरी पहिली बरी ।
जगु जगु जीवउ मेरी अब की धरी ।।
कहु कबीर जब लहुरी आई बड़ी का सुहाग टरिओ ।
लहुरी संगि भई अब मेरै जेठी अउरु धरिओ ।।

इनमें से पहले पद की चार लाइनें कबीर साहब की माता की ओर से कही हुई जान पड़ती हैं जिनमें वे झल्लाकर कहती हैं—"मेरी बहू का अच्छा-ख़ासा नाम धनियाँ था जिसे ये मुंड़िए साधू 'रामजनियाँ' कहा करते हैं, इन्होंने हमारा घर चौपट कर दिया है. . . . आदि ।" बाद की दो लाइनों में कबीर साहब दूसरा जवाब देते हैं । अगर यह पद कबीर साहब का ही बनाया हुआ मान लिया जाए तब तो ज़रूर यह मानना पड़ेगा कि उनका विवाह हुआ था । लेकिन हम देखते हैं कि 'गुरुग्रंथ साहब' में भी भारी तादाद ऐसे पदों और दोहों की है जो उनकी असली रचनाएँ नहीं जान पड़ते । असल में कबीर साहब लिखने-पढ़ने में ज्यादा विश्वास नहीं करते थे इसलिए उनकी बानियाँ सिलसिलेवार लिखकर तैयार नहीं की गईं । उनकी बानियों का कोई भी गुटका ऐसा नहीं मिलता जो उनके समय का तैयार किया हुआ जान पड़े और सभी में कुछ न कुछ मिलावट ज़रूर है । शायद इसीलिए एक कहावत चल पड़ी है कि "कुछ-कुछ कहीं कबीर-दास, और कहीं सब संतन ।" इसलिए यह कहना बड़ा मुश्किल है कि यह पद कबीरदास का कहा हुआ है या 'संतन' का कहा हुआ है । मैंने सैकड़ों हाथ की लिखी और छपी हुई पोथियों की मदद से कबीर साहब की असली वाणी का पता लगाने की कोशिश की है और उसे 'कबीर-ग्रंथावली' नाम की किताब में छपवाया है । उसमें ये दोनों पद नहीं मिलते इसलिए जान पड़ता है कि किसी ने बाद में इन्हें उनके नाम पर चालू कर दिया । दूसरे पद में तो असल में उन्होंने कुबुद्धि और सुबुद्धि का रूपक

बाँधा है। कभी-कभी कबीर साहब ऊँचे ज्ञान की बातें इसी तरह व्यंग्य में बताते हैं। ऐसे पदों का कुछ टेढ़ा मतलब छिपा रहता है, और उनका सीधा मतलब लगाने से भूल हो सकती है। उनके नाम से एक दोहा और भी चालू है जिसको लेकर लोग यह कहा करते हैं कि उन्होंने अपनी शादी की बाबत खुद लिखा है। वह दोहा इस प्रकार है—

नारी तो हम भी करी, बूझा नहीं बिचार।
जब जानी तब परहरी, नारी बड़ा बिकार॥

इसके बारे में भी यह बता देना ज़रूरी है कि यह उनकी असली बानियों में नहीं मिलता, इसलिए बाद का प्रक्षेप है। उनका एक असली पद ऐसा ज़रूर है जिसमें कहा गया है—

मुसि मुसि रोवै कबीर की माइ।
यह बारिक कैसै जीवहि खुदाइ॥
कहै कबीर सुनहु मेरी माई।
पूरनहारा त्रिभुवनराई॥

'यह बारिक कैसे जीवहि खुदाइ' का मतलब यह भी लगाया जा सकता है कि कबीर साहब का कोई बच्चा है जिसके लिए उनकी माता चिंता कर रही हैं कि "हाय ख़ुदा, यह बालक कैसे जिएगा?" (क्योंकि कबीर ने कमाना-धमाना छोड़कर भक्ति शुरू कर दी थी)। लेकिन असल में यहाँ कबीर की माँ ख़ुद उन्हीं के बारे में चिंतित हैं। बेटा चाहे जितना बड़ा हो जाय, माता उसे छोटा 'बालक' ही समझती है।

कहने का मतलब यह कि कबीरदास गृहस्थ जीवन ज़रूर बिताते थे लेकिन ऐसी कोई बात नहीं मिलती जिसके बूते पर यह कहा जा सके कि उनका विवाह हुआ था और उनके लड़के-बच्चे भी थे।

एक ओर जहाँ लोग उनके विवाह वग़ैरह की बात सोचते हैं वहीं दूसरी

और उनका अखंड ब्रह्मचर्य साबित करने के लिए भक्तों में इस तरह की एक कहानी मशहूर है। एक बार भगवान ने कबीर साहब की परीक्षा लेने के लिए स्वर्ग से एक अप्सरा को भेजा और उससे कहा कि "बनारस में मेरा एक भक्त कबीरदास नाम का है। जाकर जरा देखो तो सही, तुम्हारे जादू में आता है कि नहीं!" अप्सरा सोलहों शृंगार करके इस तरह सज-धज कर चली मानों शुकदेव को मोहने के लिए रंभा चली हो। उसके मधुर बोल में अमृत बरसता था। रूप उसका ऐसा था कि ब्रह्मा का तप भी टूट जाए, आदमी की क्या बिसात! वह चलती थी तो ऐसा लगता था जैसे नाच रही हो। वह जिसकी ओर निहारती थी उसे काम का बान बेध देता था।

कबीर के पास आकर उस अप्सरा ने कहा—, "मेरा रूप जरा देखो। निगाहें नीची मत करो। इस रूप को पाने के लिए लोग कितना तप करते हैं। लोग हिमालय पर तप करते हैं, काशी में करवत लेते हैं, फिर भी मुझे नहीं पाते। सो मैं तुम्हारे सामने सहज ही खड़ी हूँ। मेरे साथ सुख भोगो नहीं तो यह सारी तपस्या बेकार जाएगी।"

कबीर साहब ने कहा, "सुनो माता! स्वर्गलोक में तुम्हें क्या दुःख पड़ा कि यहाँ आ गई हो? जुलाहे की मेरी जाति है और धंधा भी मेरा मद्धिम है। तुम राजकुमारों के पास जाओ जहाँ अगर और कस्तूरी से घर महमहाता रहता है। मैं तो वह पत्थर हूँ जो कभी पसीज नहीं सकता। मेरे पास बैठकर तुम खुद ही लाज से धँस जाओगी। तुम्हारी निगाहों में मुझे जहर दिखलाई दे रहा है। मेरे प्राण तो हरि से बँधे हैं। यहाँ तुम्हारे लिए कहाँ ठिकाना? इसलिए माता, मुझे बख्शो और मेरी आशा छोड़ो। वहीं वापस जाओ जहाँ से आई हो। क्या स्वर्गलोक उजाड़ हो गया जो मेरे पास दौड़ी आई हो?"

जब अप्सरा सारे उपाय करके हार गई तो भगवान के पास जाकर

उसने सारा हाल कह सुनाया और कहा कि "सूरज चाहे पश्चिम दिशा में उदय हो जाए लेकिन कबीर का मन कभी नहीं डगमगा सकता। माया से इतना उदासीन आदमी तो कहीं मिलेगा ही नहीं।" ऐसा सुनकर भगवान प्रसन्न हो गए और खुद जाकर कबीर के सामने प्रकट हो गए। कबीर के नेत्र उनके दर्शन से शीतल हो गए। भगवान ने कहा—, "जो भी इच्छा हो, माँगो। मैं तुरंत दूंगा। कहो तो माथे पर छत्र तनवा दूँ। कहो तो आठों सिद्धियाँ और नवों निधियाँ दूँ। कहो तो सारी धरती का मालिक बना दूँ।"

कबीर साहब ने कहा, "ऐ त्रिभुवनराय, मैं कुछ भी नहीं चाहता। मेरी छोटी बुद्धि में कुछ सुझाई ही नहीं देता। चींटी भला परवत उठा सकती है? तारे चन्द्रमा को छिपा सकते हैं? अंजलि में समुद्र समा सकता है? मैं तो उस बालक के समान हूँ जिसे गुड़ और माहुर का फ़र्क़ नहीं मालूम। मैं मति का भोला हूँ, अच्छा-बुरा क्या जानूँ?"

भगवान को यह सुनकर बड़ा आनंद हुआ। उन्होंने कबीर के सिर पर अपना हाथ रखा और उन्हें अजर-अमर बनाकर ख़ुद बैकुंठ की ओर प्रयाण किया। कबीर धन्य है जिसका मन इतना स्थिर था!

इस कथा के बारे में ज्यादा कहने की ज़रूरत नहीं। हरएक भक्त के साथ ऐसी कहानी ज़रूर जुड़ी हुई है और इसका मतलब सिर्फ इतना ही लगाना चाहिए कि भगवान की भक्ति का जो सचमुच दीवाना हो जाता है, उसके लिए बड़ा से बड़ा दुनियावी सुख कुछ भी नहीं है।

कबीर साहब अपने सिद्धांतों का प्रचार ज़रूर करते थे लेकिन उन्होंने अपने नाम से शायद कोई पंथ नहीं चलाया था। आजकल कबीरपंथ की बहुत-सी गद्दियाँ देश के कोने-कोने में फैली हैं। और उनकी कुछ ख़ास-ख़ास शाखाएँ भी हैं। उन सभी शाखाओं को चालू करनेवालों के बारे

में सोचा जाता है कि वे कबीर साहब के निजी शिष्य थे। कबीरपंथ की छत्तीसगढ़ी शाखा धर्मदास साहब से चली है। इस शाखा के कबीरपंथी यह मानते हैं कि कबीर साहब ने अपना यह शरीर छोड़ने के बाद बांधवगढ़ में फिर प्रकट होकर धर्मदास को उपदेश दिया था और उन्हें अपना पंथ चलाने की आज्ञा दी थी। इससे साफ़ ज़ाहिर है कि उन्होंने अपना पंथ कबीर साहब के देहांत के बाद ही चलाया था—यद्यपि पंथ का नाम 'कबीर पंथ' ही रखा था। इसी तरह बिहार राज्य के सारन ज़िले में धनौती का जो कबीरपंथी मठ है उसे चलानेवाले भगवानदास माने जाते हैं। उनके बारे में कहा जाता है कि वे हमेशा कबीर साहब के साथ रहा करते थे और उनके भजन आदि लिखते जाते थे। उन्हीं में से ६०० वचनों का एक गुटका उन्होंने अपने लिए तैयार किया था जो आगे चलकर 'बीजक' के नाम से मशहूर हुआ। लेकिन उनके बारे में भी यह कहना बड़ा मुश्किल है कि वे कबीर साहब के समय में मौजूद थे। कबीरचौरा मठ, (काशी) के सबसे पहले महंत सुरतगोपाल साहब के बारे में यही बात कही जा सकती है। कमाल साहब के बारे में कहा जाता है कि लोगों के बहुत कहने-सुनने पर भी उन्होंने न तो कबीर साहब के नाम से कोई पंथ चलाया और न ही अपने नाम से कोई पंथ चलाने की ज़रूरत उन्होंने समझी। असल में कबीर साहब ने पंथ चलाने की बुराई की है। वे तो मेहनत करके सीधे-सादे ढंग से अपनी ज़िंदगी बसर करने पर जोर देते थे। इसलिए कमाल को ही उनका सबसे पुराना शिष्य मानना चाहिए। पुराना होने के ही कारण उनकी ज़िंदगी के बारे में हमें ज्यादा मालूम भी नहीं। कमाली के बारे में पहले बताया ही जा चुका है। इसके अलावा पद्मनाभ, तत्वा, जीवा, ज्ञानी, जागूदास, रामकृपाल आदि भी उनके शिष्य बताए जाते हैं; लेकिन ये लोग यद्यपि उनके उपदेशों पर चलनेवाले थे फिर भी उनकी ज़िंदगी में शायद इनमें से कोई भी नहीं रहा होगा।

कबीर साहब के बारे में यह मशहूर है कि वे पढ़े-लिखे बिलकुल नहीं थे। 'बीजक' में एक साखी ऐसी मिलती है जिससे इस बात की पुष्टि होती है। वह इस प्रकार है—

मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ।
चारिउ जुगन महातम कबीर, मुखहिं जनाई बात॥

किसी पाठशाला में नियमित रूप से उनकी पढ़ाई-लिखाई नहीं हुई थी, इतना तो माना जा सकता है, लेकिन कम से कम साक्षर जरूर थे और पूर्व संस्कारों से या संत-संगति से धर्म और साधना की उनको गहरी जानकारी थी। वेद, उपनिषद्, गीता, भागवत आदि की मोटी-मोटी बातों का उनको पता था और सिद्धों तथा गोरखनाथी योगियों द्वारा चलाई हुई साधना की तो उन्होंने गहरी छानबीन की थी और उसकी हरएक बारीक बात को अच्छी तरह जानते थे। साथ ही शैव, शाक्त और जैन धर्म वगैरह की ख़ास-ख़ास बातें भी वे मानते थे और दूसरी ओर मुस्लिम मज़हब की सभी अच्छाइयों और बुराइयों के बारे में उनको राई-रत्ती मालूम था। लेकिन उनकी सबसे बड़ी खासियत यह थी कि वे इनमें से किसी एक के आँख मूँदकर पिछलग्गू नहीं हुए। चीज़ों को समझने-परखने का और गुत्थियों को सुलझाने का उनका अपना एक निजी तरीका था जो सबसे निराला था। उनकी प्रतिभा ज़बरदस्त थी, इसलिए उन्होंने सोच-समझकर अपनी निर्गुण भक्ति का एक नया रास्ता निकाला जिसमें प्रेम और विरह को सब से ऊँचा स्थान दिया गया, बाहरी आडम्बरों पर करारी चोट की गई, मन को उलटने की बात बताई गई (जो 'सुरति योग' के नाम से योग का एक नया तरीका हुआ) और लोक-वेद का झमेला छोड़कर सहज ढंग से ज़िंदगी बिताने पर ज़ोर दिया गया।

अपने सिद्धांतों को उन्होंने अपनी बानियों में बताया है, लेकिन दुर्भाग्य-

वश आज उनकी रचनाओं के बारे में एक बड़ा भारी गोरखधंधा खड़ा हो गया है और उस जंजाल से उनकी असली रचनाओं का पता लगाना इस समय एक मुश्किल काम हो गया है। इसका कारण यह है कि ख़ुद कबीर साहब पोथी-पत्रा में विश्वास नहीं करते थे, इसलिए उनको तो अपनी रचनाएँ सिलसिलेवार लिखकर रखने की कोई चिंता भी नहीं थी और शायद उनकी जानकारी में दूसरा कोई भी इस तरह की हिमाकत नहीं कर सकता था। जैसा कि पहले बताया गया सिर्फ़ भगवान साहब के बारे में यह मशहूर है कि वे उनकी बानियाँ एक गुटके में लिखते जाते थे जिसे बाद में 'बीजक' नाम दिया गया। लेकिन उसको देखने से पता लगता है कि वह इतना पुराना नहीं जितना कि समझा जाता है। लेकिन कबीर साहब की रचनाओं में सब से पहले बीजक ही प्रेस में छापा गया और अब तक वह तीस-चालीस जगहों से प्रकाशित हो चुका है और उनके न जाने कितने संस्करण बिक चुके हैं। इसका कारण यह है कि कबीरपंथी लोग उसी को अपना धर्मग्रंथ मानते हैं और यह भी विश्वास करते हैं कि उसी में कबीर साहब की असली वाणी बिना किसी मेल-मिलावट के सुरक्षित है। लेकिन सच्ची बात यह है कि आजकल जितनी भी पुस्तकें कबीर साहब की रचनाओं की मिलती हैं उनमें से किसी को भी पूरे तौर पर प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। असल में कबीर साहब के समय या उनके बाद पहले-पहल जो पोथी उनकी वाणियों को तैयार की गई होगी। वह अब कहीं नहीं मिलती। इसका नतीजा यह है कि उनकी बानियों की जितनी भी पोथियाँ मिलती हैं सब में उनका सिल-सिला, उनका पाठ और उनकी संख्या भिन्न-भिन्न है। 'श्री गुरुग्रंथ साहब', जिसका संग्रह सिक्खों के पाँचवें गुरु श्री अर्जुनदेव ने सं० १६६१ वि० में करवाया था, संत साहित्य का एक बड़ा भारी संग्रहग्रंथ है। उसमें सिक्ख गुरुओं के अलावा अन्य संतों की वाणियों का भी संकलन है।

कबीर साहब के भी लगभग सवा दो सौ पद और ढाई सौ श्लोक या दोहे उसमें मिलते हैं। 'ग्रंथ साहब' में सिक्ख लोग अपने गुरुओं की आत्मा का निवास मानते हैं, इसलिए उसकी दूसरी नकल तैयार करते समय या उसे छपवाते समय उसकी एक मात्रा में भी अंतर नहीं किया जाता। इसका नतीजा यह है कि तब से लेकर आज तक उसके पाठ में तनिक भी हेर-फेर नहीं हुआ और वह ज्यों का त्यों सुरक्षित माना जा सकता है। लेकिन उसमें कबीर साहब की वाणियाँ जिस पोथी से ली गई, हो सकता है कि उसमें ही कुछ गड़बड़ी पहले से ही रही हो। जो भी हो, इस संकलन में भी संदेह की बहुत-सी बातें मौजूद हैं और उसे ज्यों का त्यों असली नहीं माना जा सकता। इसी तरह दूसरे पंथों में भी कबीर साहब की रचनाओं के संकलन मिलते हैं क्योंकि संतों के सभी संप्रदायों में उनका बहुत ही अधिक सम्मान है। उनमें से एक का जिक्र कर देना यहाँ जरूरी है। राजस्थान में दादूपंथ का आजकल काफ़ी प्रचार है और पहले तो उसका प्रभाव और भी ज्यादा था। उस पंथ में पाँच महात्माओं की वाणी एक ही पोथी में इकट्ठा कर, उसे 'पंचवाणी' कहा करते हैं और उसकी नित्यप्रति पूजा-आरती करते हैं। इस 'पंचवाणी' में दादूजी, कबीर साहब, नामदेवजी, रैदासजी और हरदासजी—इन पाँच महात्माओं की वाणियाँ इसी क्रम से मिलती हैं। इसमें कबीर साहब के ज्यादातर चार सौ के लगभग पद, आठ सौ के लगभग साखियाँ या दोहे और कुछ रमैनियाँ या चौपाइयाँ मिलती हैं। इसी तरह का एक संस्करण 'कबीर-ग्रंथावली' नाम से काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रकाशित करवाया था। इसके अलावा सीमावाग, बड़ौदा के कबीर प्रेस से और बंबई के वेंकटेश्वर प्रेस से तथा कुछ दूसरे प्रेसों से भी उनकी केवल साखियाँ ही छापी गयी हैं। इलाहाबाद के बेलवेडियर प्रेस और काशी के कबीरचौरा से 'शब्दावली' नाम से कबीर साहब के केवल पद ही छापे गए हैं। शांति-

निकेतन के आचार्य क्षितिमोहन सेन ने घूम-घूमकर संतों के मुख से निकले हुए पदों को इकट्ठा किया और उन्हें वहीं से चार भागों में छपवाया। इसी संकलन के सौ पदों का अंग्रेजी अनुवाद कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर की प्रेरणा से छपा, जिससे कबीर साहब का प्रचार पश्चिमी देशों में भी बढ़ा। रवींद्र बाबू पर कबीर साहब की वाणियों का गहरा असर था।

लेकिन, जैसा पहले कहा गया, इनमें एक दूसरे से बड़ा फ़र्क मिलता है इसलिए सवाल यह उठता है कि उन महात्मा की असली रचना कितनी और किस तरह की थी, क्योंकि असल में उन्हीं के आधार पर हम उनका महत्व आँक सकते हैं। मैंने इसी पहलू को ध्यान में रखकर अपनी खोज शुरू की थी, और बहुत-सी हाथ की लिखी प्रतियों और छपी हुई किताबों से, मैंने कबीर साहब के करीब सोलह सौ पद, साढ़े चार हज़ार साखियाँ और एक सौ चौंतीस रमैनियाँ एकत्र कीं। सवाल यह था कि क्या इन सभी को उनकी असली रचना मान लिया जाए? कबीरपंथियों का तो विश्वास है कि सद्गुरु की वाणी अनंत है और उसका पार पाना कठिन है। पेड़ों में जितने पत्ते हैं और गंगा में जितने रेत के कण हैं, उतनी वाणियाँ सद्गुरु कबीर की हैं—

जेते पत्र बनसपती, औ गंगा की रैन।
पंडित बिचारा क्या कहै, कबीर कही मुख बैन॥

कबीर साहब के मुख से शब्द तो बहुत निकले होंगे लेकिन उनकी रचनाओं की जो पहली पोथी तैयार की गई होगी उसके अधिक से अधिक पास पहुँचने की कोशिश हम इन पोथियों के ज़रिए कर सकते हैं क्योंकि ये सब उसी पर आधारित हैं। इस निगाह से काम कर मैंने देखा कि करीब दो सौ पद, बीस रमैनियाँ, एक चौंतीसी रमैनी और साढ़े सात सौ साखियाँ ऐसी हैं जिन्हें बिना किसी आपत्ति के कबीर साहब की असली रचना माना जा सकता है। इस संकलन को 'कबीर-ग्रंथावली' नाम से इलाहाबाद

विश्वविद्यालय के हिंदी परिषद् ने प्रकाशित किया है। यह कहना तो मुश्किल है कि इसमें दी हुई वाणी हू-ब-हू वैसी ही है जैसी कबीर साहब के मुख से निकली। लेकिन इतना ज़रूर कहा जा सकता है कि जितने भी संकलन उनकी वाणियों के अब तक मिलते हैं उनमें यह सब से ज्यादा प्रामाणिक है—वैसे थोड़ा-बहुत मतभेद तो हो ही सकता है।

कबीरपंथी लोग यह मानते हैं कि कबीर साहब ने बहुत से लोगों को शास्त्रार्थ में हराकर उन्हें अपना शिष्य बनाया और बहुत से श्रद्धालुओं को समय-समय पर उपदेश दिया। ऐसे शास्त्रार्थ पर उपदेश जिन ग्रंथों में मिलते हैं उन्हें 'गोष्ठी-ग्रंथ' या 'बोध ग्रंथ' कहा जाता है; जैसे—कबीर-गोरख गोष्ठी, कबीर-शंकराचार्य गोष्ठी, कबीर-दत्तात्रेय गोष्ठी, कबीर-देवदूत गोष्ठी, कबीर-जोगाजीत गोष्ठी, कबीर-सर्वाजीत गोष्ठी, कबीर-हनुमान गोष्ठी, कबीर-वशिष्ठ गोष्ठी, कबीर-रैदास गोष्ठी और मुहम्मद बोध, सुल्तानबोध गरुड़बोध, अमरसिंहबोध, वीरसिंहबोध, जगजीवन-बोध, भूपालबोध, कमालबोध, ज्ञानप्रकाश या धर्मदासबोध आदि। हम देखते हैं कि देशकाल की सीमा लाँघकर इनमें दो ऐसे आदमियों से भी बातचीत करायी गई है जिनके समय में सैकड़ों वर्षों का अंतर है। फिर भी कबीरपंथी लोग इन्हें कबीर साहब की ही रचनाएँ मानते हैं, क्योंकि उनका विश्वास है कि वे आवश्यकतानुसार किसी भी समय देह धारण कर सकते हैं। लेकिन इन ग्रंथों को देखने से साफ़ ज़ाहिर होता है कि जब कबीरपंथ की स्थापना हुई और दूसरे पंथवालों से उनकी नोक-झोंक शुरू हुई तभी इन ग्रंथों की रचना हुई होगी। उनमें कल्पना की उड़ान ख़ूब देखने को मिलती है। उदाहरण के लिए 'गोरख गोष्ठी' में बताया गया है कि जब गोरखबाबा कबीर साहब से शास्त्रार्थ करने आए तो उन्होंने अपना त्रिशूल गाड़ दिया और उसकी एक नोक पर बैठकर कबीर साहब से दूसरी नोक पर बैठकर बातचीत शुरू करने को कहा। कबीर साहब ने

नरी से एक सूत ऊपर आसमान की ओर फेंककर और उसपर बैठकर ऊपर से कहा, "नाथजी, त्रिशूल तो ज़मीन पर टिका है। आइए इस धागे पर बैठकर बातचीत करें। यह बेसहारे आसमान में रुका है। धरती पर इससे बढ़िया जगह कहाँ मिलेगी?" एक दूसरी 'गोरख गोष्ठी' का नमना देखिए—

प्रश्न गोरखनाथ: **सिद्धा कौने दीनां डंड कमंडल, किन दीनीं मृगछाला।**
कौने तुमको हरिनाम सुनाया, किन दीनीं जपमाला॥

उत्तर कबीर: **ब्रह्मा दीनी डंड कमंडल, शिव दीनीं मृगछाला।**
गुरु हमारे हरिनाम सुनाया, बिष्नु दीनीं जपमाला॥

प्रश्न गोरखनाथ: **अंडान मंडान, चारि खुरी दो कान।**
जानै तो जान, नहीं झोली माला आगे आन॥

उत्तर कबीर: **अंडान धरती मंडान आकास।**
चारि खूंट चारि खुरी चंद सूर दो कान॥
नहीं आनौं झोली नहीं आनौं माला।
मोहिं गुरु रामानंद की आन॥
सींगी झोली और चरपटी।
फिर बोलै तो मारौं कनपटी॥

गोरखबाबा अपनी कनपटी सही-सावूत लेकर चम्पत हुए!

इस तरह हम यह देखते हैं कि यह ग्रंथ कबीर साहब के नहीं बल्कि बाद के कबीरपंथियों के हैं और दूसरे पक्ष में जिनके नाम हैं (जैसे गोरखनाथ) वे असल में उनके अनुयायियों के ही प्रतीक हैं।

कबीर साहब ने कहा है: "जो पहिरा सो फाटिसी, नाम धरा सो जाइ।' जो कपड़ा पहना जाता है वह कभी न कभी फटता ज़रूर है। इसी तरह

आत्मा जो शरीर रूपी चोला पहनती है, वह भी समय आने पर पंच तत्त्व में मिल जाता है। कबीर साहब के भी शरीर का अवसानकाल जब नज़दीक आया तो वे कुछ कारणवश काशी छोड़कर मगहर नामक गाँव में चले गए जो आजकल बस्ती ज़िले में हैं। अपने आख़िरी वक्त में वे मगहर क्यों गए, इसके लिए लोग तरह-तरह के अंदाज़ लगाते हैं। बहुत से लोग कहते हैं कि हिंदुओं में बहुत समय से यह विश्वास चला आ रहा है कि मगहर में मरने से मुक्ति नहीं मिला करती—'मगहर मरै सो गदहा होय'। पुराणों में यह कथा मिलती है कि दक्ष प्रजापति ने इसी जगह एक बड़ा यज्ञ किया था, जिसमें उन्होंने शंकरजी का भाग नहीं लगाया था। अपने पति का अपमान देखकर दक्ष प्रजापति की कन्या सती ने तुरंत अपना शरीर छोड़ दिया था। इससे क्रुद्ध होकर शंकरजी ने अपने गण भेजकर दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करा दिया था और उसी समय यह शाप दिया था कि जो यहाँ शरीर छोड़ेगा और मुझसे बैर रखनेवाला होगा या विष्णु का भक्त न होगा, वह अगले जन्म में गधा होकर पैदा होगा। ज़िंदगी भर अंधविश्वासों के ख़िलाफ़ संघर्ष करनेवाले कबीर साहब ने मगहर का यह कलंक दूर करने के लिए ही अपने अंतिम समय में वहाँ प्रयाण किया। कबीरपंथी ग्रंथों में यह बताया गया है कि जब कबीर साहब का यह निश्चय लोगों को मालूम हुआ तो चारों ओर से राजा, नवाब और भक्तलोग उनके अंतिम दर्शन के लिए काशीपुरी में आने लगे। काशी-नरेश वीरसिंहदेव बघेला, रीवां-नरेश रामसिंह और अयोध्या के नवाब महमुद्दौला आदि ने मिलकर उनसे यह प्रार्थना की कि मगहर जाते समय वे उन सब लोगों को साथ ले चलें। इस प्रार्थना को कबीर साहब ने मान लिया। इस तरह जब वे काशी छोड़कर मगहर पहुँचे तो वहाँ एक बड़ा भारी मेला-सा लग गया और काशी में तो जैसे अँधेरा छा गया और वह वीरान लगने लगी। मगहर में वहाँ के नवाब बिजली ख़ाँ पठान

की तरफ़ से सब लोगों के लिए भोजन का प्रबंध किया गया, लेकिन इतनी भीड़ के लिए वहाँ पानी नहीं था, क्योंकि वहाँ की नदी भी शंकर-जी के शाप से सूखी हुई थी। कबीर साहब ने सब लोगों का दुःख दूर करने के लिए अपनी दिव्य शक्ति से उस नदी में फिर से पानी लहरा दिया और उसका नाम 'आमी' रखा क्योंकि उसका शीतल जल अब अमृत की तरह मीठा हो गया था। इसके बाद उन्होंने वहाँ पर इकट्ठे लोगों को अपना अंतिम उपदेश दिया और पास में ही स्थित एक संत की कुटी में प्रवेशकर उसका दरवाज़ा बंद करवा दिया। थोड़ी देर बाद एक धड़ाके का शब्द हुआ और एक ज्योति कुटिया में से निकलकर ऊपर आसमान की ओर चली गयी। लोगों को विश्वास हुआ कि कबीर साहब का महाप्रयाण हो गया और सब ने मिलकर उनका जयजयकार किया।

लेकिन इसके बाद एक झगड़ा भी उठ खड़ा हुआ। काशी-नरेश वीरसिंह देव और सभी हिंदू भक्त यह कहते थे कि कबीर साहब का अंतिम संस्कार अग्नि में जलाकर करना चाहिए क्योंकि वे हम हिंदुओं के गुरु थे। दूसरी ओर बिजली ख़ाँ और उसके मुस्लिम साथी यह कहते थे कि उनका संस्कार मुस्लिम मज़हब के अनुसार दफ़नाकर किया जाना चाहिए, क्योंकि वे हमारे पीर थे। बात इतनी बढ़ी कि दोनों ओर से तलवारें खिंच गईं और लड़ाई के बाजे बजने लगे। लेकिन उसी समय यह आकाश-वाणी हुई कि "तुम लोग बेकार एक दूसरे का ख़ून मत करो। कुटी का दरवाज़ा खोलकर देखो तो सही!" लोगों ने जब दर्वाज़ा खोला तो उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वहाँ कबीर साहब का मृत शरीर नहीं है, बल्कि उसकी जगह केवल फूल और चद्दर पड़े हैं। लोगों को यह विश्वास हो गया कि कबीर साहब को सदेह मुक्ति मिली और इसके बाद उन्होंने फूल और चदरा आधा-आधा बाँटकर अपने-अपने रीति-रस्म के अनुसार उनका आख़िरी संस्कार किया।

गरीबदास साहब का कहना है—

कासी तज कर मगहर चाले, किया कबीर पयान ।
चद्दर फूल बिछे ही छांड़े, सब्दे सब्द समान ।।

मलूकदासजी ने कहा है—

कासी तजि गुरु मगहर आए, दोउ दीनन के पीर ।
कोइ गाड़े कोइ अग्नि जरावै, नेक न धरते धीर ।।
चार दाग से सतगुरु न्यारा, अजरों अमर सरीर ।
दास मलूक सलूक कहत ह, खोजो खसम कबीर ।।

चार दाग का मतलब पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु से है । कबीर साहब का शरीर इन चारों दागों से परे था—ऐसा भक्तों का विश्वास है । कुछ विद्वान इस कहानी के भीतर एक रहस्य छुपा हुआ देखते हैं । उनका कहना है कि कबीर साहब असल में ऐसे परिवार में पैदा हुए थे जिसमें मुर्दों को जलाया भी जाता है और फिर उस भस्म पर समाधि भी बनाई जाती है । इन लोगों का विचार है कि कुछ जोगी जातियाँ उस समय ऐसी थीं जिन्हें हाल ही में हिंदू से मुसलमान बना लिया गया था । ऐसी जातियों के लोग हिंदुओं के भी रीति-रस्म मानते थे और मुसलमानों के भी । ये लोग ज्यादातर कताई-बुनाई का काम भी करते थे । हो सकता है कि कबीर साहब भी ऐसे ही किसी परिवार में पले हों । वैसे बहुत-सी पुरानी जीवनियों में फूलवाली घटना की बिलकुल चर्चा नहीं है । उदाहरण के लिए अनंतदास ने अपनी 'परचई' में उनके मगहर जाकर प्राण छोड़ने का वर्णन तो किया है लेकिन शव की जगह फूल हो जाने के चमत्कार की चर्चा एकदम नहीं की है ।

जो भी हो, इतना निश्चित रूप में कहा जा सकता है कि कबीर साहब का देहांत मगहर में ही हुआ था क्योंकि खुद उन्हीं के दो पदों में इस बात की चर्चा है कि अपने जीवन के अंतिम समय में वे वहाँ आ गये थे । वहाँ

आने का जो भी कारण रहा हो, लेकिन इन पदों में उन्होंने काशी और मगहर के बारे में फैली हुई ग़लत धारणा का खण्डन ज़रूर किया है। उन पदों में से एक की कुछ पंक्तियाँ इस तरह हैं—

अब कहु रांम कवन गति मोरी।
तजिले बनारस मति भई थोरी॥
सगल जनम सिवपुरी गँवाया।
मरती बार मगहर उठि आया॥
बहुत बरिस तपु कीया कासी।
मरनु भया मगहर की बासी॥

दूसरा पद ऐसा है जिसमें उनके पक्के आत्मविश्वास की झलक मिलती है—

लोगा तुम हौ मति के भोरा।
जउ कासी तनु तजहि कबीरा तौ रांमहिं कौंन निहोरा॥
जो जन भाउभगति कछु जांनैं ताकौ अचरजु काहो।
जैसें जल जलहीं ढुरि मिलियौ त्यौं ढुरि मिल्यौ जुलाहो॥
कहै कबीर सुनहु रे लोई मरभि न भूलौ कोई।
क्या कासी क्या मगहर ऊखर हिदै रांम जौ होई॥

उनको इस बात का पक्का विश्वास था कि 'भावभक्ति' के भरोसे वे मगहर में प्राण छोड़ने पर भी अपने राम में इस तरह घुल-मिल जाएँगे जैसे पानी पानी में मिल जाता है, क्योंकि जिसके दिल में राम ही राम हों उसके लिए जैसे काशी में मरना वैसे ही मगहर में मरना। अगर काशी में मरने से ही मुक्ति मिल जाए तो फिर राम की क्या बड़ाई समझी जाए ?

मगहर में कबीर साहब की मृत्यु होने के बारे में जहाँ कोई मतभेद नहीं, वहीं पर इस बात के बारे में काफ़ी मतभेद है कि उनकी मृत्यु कब हुई थी। उनकी मृत्यु के बारे में इस समय तक चार मत हैं जो यहाँ दिए गए

पद्यों पर आधारित हैं—

१. संबत पंद्रह सौ पचहत्तरा, किया मगहर को गौन।
माघसुदी एकादसी, रलो पौन में पौन ॥
२. पंद्रह सौ औ पांच में, मगहर कीन्हों गौन।
अगहन सुदि एकादसी, मिल्यो पौन में पौन ॥
३. पंद्रह सौ उनचास में, मगहर कीन्हों गौन।
अगहन सुदि एकादसी, मिलो पौन में पौन ॥
४. संबत पंद्रह सौ उनहत्तरा रहाई।
सतगुरु चले उठि हंसा ज्याई ॥

पहले दोहे की दूसरी पंक्ति में कहीं-कहीं 'आहनसुदि एकादसी' तिथि भी मिलती है।—ये सभी पद्य लोगों में जबानी तौर पर चले आ रहे हैं और उनके रचयिताओं का ठीक-ठीक पता नहीं, लेकिन कबीरपंथी लोग अधिकतर पहला दोहा ठीक मानकर कबीर साहब का अंतर्धान होना सं. १५७५ में मानते हैं। इस तरह वे लोग जेठ पूनो स. १४५६ लेकर अगहन सुदी एकादशी सं. १५७५ तक उनका जीवनकाल ११९ वर्ष ५ मास और २७ दिनों तक का मानते हैं। बाबू लहनासिंह नाम के एक कबीरपंथी ने 'कबीर कसौटी' नाम की अपनी पुस्तक में लिखा है कि माघसुदी एकादशी दिन बुधवार सं. १५७५ को कबीर साहब ने मगहर के लिए प्रस्थान किया था और उसी दिन वहाँ पहुँचकर शरीर छोड़ा था। लेकिन सं. १५७५ की माघ सुदी ११ को बुधवार नहीं बल्कि मंगलवार का दिन पड़ता है।

लेकिन 'आर्कियालाजिकल सर्वे आफ़ इंडिया' (भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण) की एक रिपोर्ट से मालूम होता है कि बिजलीख़ाँ ने बस्ती ज़िले के पूर्व में आमी नदी के दाहिने तट पर कबीर साहब का एक रौज़ा सन् १४५० या सं० १५०७ में बनवाया था और उसकी मरम्मत नवाब फ़िदाईख़ाँ ने

११७ साल बाद सन् १५६७ या सं० १६२४ में कराई थी। इससे जान पड़ता है कि उनकी मृत्यु सं० १५०५ में हो गई थी, क्योंकि अधिकतर किसी की मृत्यु के बाद ही उसका रौज़ा या स्मारक बनवाया जाता है। इसलिए उनकी मृत्यु के बारे में ऊपर का दूसरा दोहा ही ज्यादा ठीक मालूम पड़ता है। एक तरह से देखा जाए तो पहले दोहे में जो "संवत् पंद्रह सौ पचहत्तरा" कहा गया है उसका मतलब भी शायद पंद्रह सौ पाँच ही है। दादूपंथी राघवदास ने अपने भक्तमाल की रचना-तिथि के लिए "संवत् सत्रह सौ सत्रहोतरां" इस तरह लिखा है कि जिसका मतलब सं० १७१७ ही होता है न कि सं० १७७०। इसी तरह कबीरसाहब की मृत्यु का संवत् भी पहले "पंद्रह सौ पाँचोत्तरा" की तरह मशहूर रहा होगा और फिर बिगड़ते-बिगड़ते "पंद्रह सौ पंचहोत्तरा" या "पंद्रह सौ पचहत्तरा" हो गया होगा : "पंद्रह सौ पचहोत्तरा" का मतलब होगा : पंद्रह सौ से पाँच बाद। इसी तरह "सत्रहोत्तरा" का मतलब है : सत्रह वर्ष बाद। 'उत्तर' का मतलब 'बाद' या पीछे भी होता है। इस तरह कबीर साहब की अवस्था मृत्यु के समय असल में पचास वर्ष की रही होगी।

पुराने संतों और भक्तों ने अपने बारे में अधिक बतलाने की कभी चिन्ता न की। अगर कभी कुछ कहा भी तो अधिकतर अपनी दीनता दिखाने के ही लिए कहा। तुलसीदास सूरदास आदि के बारे में भी हम वही बात पाते हैं। आगे चलकर संत प्राणनाथ वग़ैरह की दिनचर्या के बारे में उनके शिष्यों ने विस्तारपूर्वक लिखा है जिसमें काफ़ी सच्चाई भी है। लेकिन दुर्भाग्य से कबीर साहब की ऐसी कोई जीवनी नहीं मिलती। ऊपर के विवरण से हम देखते हैं कि उनकी जीवनी के संबंध में केवल दो ही बातें ऐसी हमें मालूम हैं जिनके ठीक होने का हम पूरा-पूरा दावा कर सकते हैं। एक तो यह कि वे काशी के जुलाहे थे और दूसरे यह कि उनकी जीवन-लीला मगहर में समाप्त हुई थी। लेकिन दुनियावी मरना-जीना संतों के लिए कोई महत्त्व नहीं

रखता। असली बात तो उनकी 'करनी' है। कबीर साहब पैदा चाहे जहाँ हुए हों और पाले-पोसे चाहे जितने नीच परिवार गए हों, लेकिन अपनी करनी से उन्होंने सारी दुनिया को यह दिखला दिया कि आदमी जन्म से नहीं बल्कि कर्म से बड़ा होता है। नाभादासजी ने 'भक्तमाल' में उनका परिचय देते हुए लिखा है—**"कबीर कानि राखी नहीं, वर्णाश्रम खट दरसनी।"** वे परमात्मा में पूरा विश्वास करते थे और अपनी साधना से ऊँचे उठते-उठते उससे 'एकमेव' हो गए थे। उनकी भेद-दृष्टि खत्म हो गई थी, इसलिए वे अपने को अमर मानते थे। उन्होंने कहा है—

हंम न मरैं मरिहै संसारा।
हंमकौं मिला जियावनहारा॥
हरि मरिहै तौ हंमहूं मरिहैं।
हरि न मरै हंम काहे को मरिहैं॥
कहै कबीर मन मनहिं मिलावा।
अमर भये सुखसागर पावा॥

कबीर साहब सचमुच अमर हो गए हैं—भले ही उनका नश्वर शरीर मर गया हो। उनकी कीर्ति कभी नहीं मर सकती, क्योंकि उन्होंने 'सुखसागर' को पा लिया था और सत्य का आमने-सामने साक्षात्कार कर लिया था।

कबीर साहब की वाणी

पद

(१)

हंमारै गुर बड़े भ्रिंगी ।।
आंनि कीटक करत भ्रिग सो आपतैं रंगी ।।टेक।।

पाइं औरै पंख औरै और रंग रंगी ।
जाति पांति न लखै कोई भगत भौ भंगी ।।१।।

नदी नाला मिले गंगा कहावैं गंगी ।
समांनीं दरियाव दरिया पार नां लंघी ।।२।।

चलत मनसा अचल कीन्हीं मांहि मन पंगी ।
तत्त मैं निहतत्त दरसा संग मैं संगी ।।३।।

बंध तैं निर्बंध कीया तोरि सब तंगी ।
कहै कबीर अगम किया गम रांम रंग रंगी ।।४।।

हमारे गुरु भृङ्गी के समान हैं और ऐसे मौजी हैं कि कीड़ों को ला-लाकर उन्हें अपने ही समान भृङ्ग बनाया करते हैं। फिर तो उनके पाँव और तरह के हो जाते हैं और पंख और तरह के हो जाते हैं। वह दूसरे ही रंग में रँग उठता है। जाति-पाँति कोई नहीं देखता, भंगी भक्त हो गया है। नदी-नाले गंगा में मिलकर गंगा ही कहलाते हैं और फिर वही नदी जब समुद्र में समा जाती है तो उसका पार नहीं लगता। मेरे गुरु ने चंचल मनसा को निश्चंचल कर दिया जिससे मन बाहर न भागकर भीतर ही पैंग गया। पाँच तत्त्वों के स्थूल शरीर में तत्त्वों से परे सूक्ष्म ब्रह्म के दर्शन हुए और आत्मा का साथी (परमात्मा) साथ में ही दीख पड़ा। सभी बंधन तोड़कर उसने

मुझे राम के रंग में रँगकर अगम को भी गम्य बना दिया। अर्थात् वहाँ तक मेरी पहुँच हो गई।

(२)

गोकुल नाइक बीठुला मेरा मनु लागा तोहिं रे।
बहुतक दिन बिछुरें भए तेरी औसेरि आवै मोहिं रे ।।टेक।।
करम कोटि कौ ग्रेह रच्यौ रे नेह गए की आस रे।
आपहिं आप बंधाइया दोइ लोचन मरहिं पियास रे ।।१।।
आपा पर संमि चीन्हिए तब दीसै सरब समांन।
इहिं पद नरहरि भेंटिए तू छांड़ि कपट अभिमांन रे ।।२।।
नां कतहूं चलि जाइए नां लीजै सिरि भार।
रसनां रसहिं बिचारिए सारंग स्त्री रंग धार रे ।।३।।
साधन तें सिधि पाइए किंबा होइम होइ।
जे दिढ़ ग्यांन न ऊपजै तौ अहटि मरै जनि कोइ रे ।।४।।
एक जुगुति एक मिलै किंबा जोग कि भोग।
इन दोनिउं फल पाइए रांम नांम सिधि जोग रे ।।५।।
तुम्ह जिनि जांनौं गीत है यहु निज ब्रह्म बिचार।
केवल कहि समझाइया आतम साधन सार रे ।।६।।
चरन कंवल चित लाइए रांम नांम गुन गाइ।
कहै कबीर संसा नहीं भुगुति मुकुति गति पाइ रे ।।७।।

ऐ गोकुलनायक विट्ठल, मेरा मन तुझमें लगा है। बहुत दिन बिछड़े हो गए (आत्मा को परमात्मा से विलग हुए बहुत दिन हो गए), अब तेरी याद आ रही है! करोड़ों कर्मों वाले शरीर या जगत् को रहने का घर बनाया और निर्मोही (माया) में आस लगाई, इस प्रकार मैंने ख़ुद अपने आपको

बँधा दिया और मेरी दोनों आँखें तुम्हारे दर्शन के लिए प्यासी तड़प रही हैं। अपने और पराए को समान दृष्टि से देखे तो सब समान दीखता है। इसी तरह नरहरि को पाया जाता है, इसीलिए तू कपट और अहंकार छोड़ दे। न कहीं जाना चाहिए और न सिर पर पुस्तक-ज्ञान का बोझ लेना चाहिए, घर बैठे ही श्रीरंग सारंगधर के नाम-स्मरण का रस लेना चाहिए और उस पर मनन करना चाहिए। साधन से सिद्धि पाई जाती है, वह भी, संभव है मिले या न मिले, किन्तु यदि पक्का ज्ञान न पैदा हो तो कोई दुःखी हो न मरे (निराश न हो) एक तरकीब से एक ही चीज़ मिलती है—या तो योग ही, या भोग ही। किन्तु राम नाम की सिद्धि में योग और भोग दोनों का मज़ा है। तुम यह मत समझो कि यह कोई साधारण गीत है, यह हमारा ब्रह्मविचार या 'दर्शन' है, हमने केवल आत्म-साधना का असली तत्व कहकर समझाया है। राम का नाम और गुण गा-गाकर उनके चरणकमल में चित्त लगाना चाहिए; कबीर कहता है कि तुम जरूर ही भोग और मोक्ष दोनों पाओगे।

(३)

इहु धन मेरै हरि के नांउं।
गांठि न बांधउं बेंचि न खांउं ।।टेक।।
नांउं मेरै खेती नांउं मेरै बारी। भगति करउं जन सरनि तुम्हारी ।।१।
नांउं मेरै माया नांउं मेरै पूंजी। तुमहिं छांड़ि जानउं नहिं दूजी ।।२।।
नांउं मेरै बंधिप नांउं मेरै भाई। अंत की बेरियां नांउं सहाई ।।३।।
नांउं मेरै निरधन ज्यूं निधि पाई। कहै कबीर जैसैं रंक मिठाई ।।४।।

मेरे पास यह धन हरि के नाम का है जिसे न तो मैं गाँठ बाँध कर रखता

हूँ और न बेच खाता हूँ। नाम की ही मेरे पास खेती है, नाम की ही बाड़ी है; सेवक हूँ, तुम्हारी शरण में रहकर तुम्हारी ही भक्ति करता हूँ। नाम की ही मेरे पास रियासत है, नाम की ही पूँजी है। तुम्हें छोड़ दूसरी बात मैं जानता भी नहीं। नाम ही मेरे लिए बांधव है, नाम ही भाई है; अंत की बेला (मृत्यु के समय या संकट के समय) में भी नाम ही सहायक होता है। नाम मेरे लिए वैसा ही है जैसे निर्धन को निधि मिल जाए। कबीर कहता है वह वैसे ही आनन्द देने वाला है जैसे रंक को मिठाई मिल जाए।

(४)

तेरा जनु एक आध है कोई।
कांम क्रोध लोभ मोह बिवरजित हरि पद चीन्हैं सोई ॥टेक॥
असतुति निंदा दोउ बिबरजित तजहिं मांनु अभिमांनां।
लोहा कंचन सम करि जांनहिं ते मूरति भगवांनां ॥१॥
रज गुन तम गुन सत गुन कहिअै यह सभ तेरी माया।
चउथै पद कौं जो जन चीन्हैं तिनहीं परम पदु पाया ॥२॥
चिंतै तौ माधव चिंतामनि हरि पद रमैं उदासा।
चिंता अरु अभिमांन रहित है कहै कबीर सो दासा ॥३॥

हे राम! तेरा भक्त कोई एकाध ही होता है! जो काम, क्रोध, लोभ, मोह से दूर हो उसी को भगवान की सच्ची पहचान हो सकती है। जो तारीफ़ तथा निंदा दोनों छोड़ दे, मान-अपमान छोड़ दे, लोहा और सोना को एक-सा देखे वह साक्षात् भगवान ही है। सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण जो कहा जाता है वह सब तुम्हारी माया है। चौथे दरजे को जो भक्त समझे-पहचाने वही परम पद पाता है। यदि चिंतन करे तो माधव रूप चिंतामणि का

चिंतन करे, जो समस्त चिंताओं से मुक्ति दिलाने वाला है और निरासक्त भाव से परम पद का आनंद ले; क्योंकि जो चिंता और अभिमान से रहित होता है, कबीर कहता है कि वही सच्चा सेवक या भक्त होता है।

(५)

बाबा अब न बसउं यहि गांउं।
घरी घरी का लेखा मांगै काइथ चेतू नांउं ।।टेक।।
देही गांवां जिउधर महतौ बसहिं पंच किरसांनां ।।
नैनूं नकटू स्रवनूं रसनूं इंद्रीं कहा न मांनां ।।१।।
धरमराइ जब लेखा मांगै बाकी निकसी भारी।
पंच त्रिसनवां भागि गए लै बांध्यौ जिउ दरबारी ।।२।।
कहै कबीर सुनहु रे संतहु खेतहिं करहु निबेरा।
अब की बेर बखसि बंदे कौं बहुरि न भौजलि फेरा ।।३।।

अरे बाबा, अब इस गाँव (शरीर) में न बसूँगा; क्योंकि यहाँ कायस्थ (लेखक या काया में स्थित) चेतू (चित्रगुप्त अथवा चित्त) घड़ी-घड़ी का हिसाब माँगा करता है। देह गाँव है, प्राणधारी आत्मा उस गाँव का मुखिया है, और उसमें पाँच किसान रहते हैं जिनके नाम हैं: नैनुवाँ, नकटुवा, श्रवनुवाँ, रसनुवाँ और इंद्रिया जो ऐसे प्रबल हैं कि कहना नहीं मानते। धर्मराज ने जब लेखा माँगा तो जमा या पुण्य खाते में कुछ न निकला, बाकी (खोटी करनी) बहुत बड़ी निकली। ऐसा देखकर पाँचों किसान (ज्ञानेंद्रियाँ जो सदा से जीव की लापरवाही करती आ रही हैं) भाग खड़े हुए, फिर जीव को ही दरबारी लोग (यमदूत) बाँध ले गए। कबीर कहता है, ऐ संतो, सुनो—खेत (शरीर) का भलीभाँति निपटारा कर लो।

अब की बार बंदे को बख्श दो या छोड़ दो जिससे फिर भवसागर में फेरा न लगाना पड़े ।

(६)

ता मन कौं खोजहु रे भाई ।
तन छूटे मन कहां समाई ।।टेक।।
सनक सनंदन जैदेउ नांमां । भगति करी मन उनहुं न जांनां ।।१।।
सिव बिरंचि नारद मुनि ग्यांनीं । मन की गति उनहुं नहिं जांनीं ।।२।।
ध्रू प्रहलाद बिभीखन सेखा । तन भीतर मन उनहूं न पेखा ।।३।।
ता मन का कोई जांनैं न भेउ । ता मनि लीन भया सुखदेउ ।।४।।
गोरख भरथरी गोपीचंदा । ता मन सौं मिलि करैं अनंदा ।।५।।
अकल निरंजन सकल सरीरा । ता मन सौं मिलि रहा कबीरा ।।६।।

हे भाई, उस मन को खोजो । तन छूट जाने पर मन कहाँ समा जाता है ? सनक, सनंदन, जयदेव और नामदेव ने भक्ति की, लेकिन मन को उन्होंने भी न समझा; यहाँ तक कि शिव, ब्रह्मा तथा ज्ञानी नारद मुनि भी मन की गति न जान पाए । ध्रुव, प्रह्लाद, विभीषण और हजार मुखों वाले शेष भी, शरीर के भीतर मन का रहस्य न देख पाए । उस मन का कोई भेद नहीं जानता । असल में उस मन में शुकदेव तल्लीन हुआ । गोरख, भर्तृहरि और गोपीचंद भी उस मन से मिलकर आनंद लूटते हैं । जिसके बारे में कुछ सोचा नहीं जा सकता और जो निरंजन है और सब में मौजूद है उस मन से कबीर मिल गया ।

(७)

अब मोहिं नाचिबौ न आवै ।
मेरौ मन मंदरिया न बजावै ।।टेक।।
ऊभर था सो सूभर भरिया त्रिसनां गागरि फूटी ।
कांम चोलनां भया पुरांनां गया भरम सभ छूटी ।।१।।
जे बहु रूप किए ते कीए अब बहु रूप न होई ।
थाकी सौंज संग के बिछुरे रांम नांम बसि होई ।।२।।
जे थे अचल अचल ह्वै थाके चूके बाद बिबादा ।
कहै कबीर में पूरा पाया भया रांम परसादा ।।३।।

अब मुझे नाचना नहीं आता और मेरा मन मंदला नहीं बजाता या बजाना नहीं चाहता । यह पहले ईश्वर के ध्यान से खाली था, अब उससे लबालब भर गया है । तृष्णा की गागर फूट गई, कामवासनाओं का चोलना जिसे पहनकर नाटक किया जाता था अब पुराना पड़ गया और वह भूल भी दूर हो गई जिससे नाचने-कूदने की ख्वाहिश होती थी । दुनियावी नाटक में जो रूप बदले सो बदल चुके, अब तरह-तरह के स्वाँग रचे नहीं जाते (दुनियादारी का नाटक खेलते-खेलते मन थक गया) । नाच-गान की सारी चीजें धरी रह गईं, समाजी (कुटुम्बी जन) सब राम नाम के वश में होने पर बिछुड़ गए ! जो चंचल थे, अब स्थिर हो गए इसका दुहरा मतलब है । नाच-गान की तरफ़ अर्थात् जो हाथ-पाँव वगैहरा फेंकते थे, अब वैसा नहीं होता और भक्ति की तरफ इसका मतलब है कि मन जो चक्कर मारता था अब एक जगह टिक गया और सारा झगड़ा ख़तम हो गया । कबीर कहता है : राम की कृपा हुई, मैं नाच का पूरा ईनाम पा गया । मतलब यह कि मैं पूरा ज्ञान पा गया ।

(८)

संतौ भाई आई ग्यांन की आंधी रे ।
भ्रम की टाटी सबै उड़ांनीं माया रहै न बांधी रे ।।टेक।।
दुचिते की दोइ थूंनि गिरांनीं मोह बलेंडा टूटा ।
त्रिसनां छांनि परी धर ऊपरि दुरमति भांडा फूटा ।।१।।
आंधी पाछैं जो जल बरसै तिहिं तेरा जन भीनां ।
कहै कबीर मनि भया प्रगासा उदै भानु जब चीन्हां ।।२।।

अरे संतो भाई, ज्ञान की आँधी आ गई ! भ्रम की सारी टाटियाँ उड़ गईं, माया का बंधन न रहा । दुविधा की दोनों थून्हियाँ गिर गईं, मोह की बँडेर टूट गई, तृष्णा की छान नीचे ज़मीन पर आ पड़ी जिससे कुबुद्धि का भाँडा फूट गया । ज्ञान की इस आँधी के बाद भक्ति रस की जो वर्षा हुई उसमें तुम्हारा दास लथपथ हो गया । कबीर कहता है, भक्ति के जल से जब आँधी का तूफ़ान शांत हुआ तो उदय होता हुआ ज्ञान-रूपी सूर्य पहचान पड़ा और मन में उसका प्रकाश हुआ ।

(९)

रांम मोहि तारि कहां लै जइहौ ।
सौ बैकुंठ कहौ धौं कैसा करि पसाउ मोहिं दइहौ ।।टेक।।
जउ तुम मोकौं दूरि करत हौ तौ मोहिं मुकुति बतावहु ।
एकमेक रमि रहा सबनि मैं तौ काहे भरमावहु ।।१।।
तारन तरनु तबै लगि कहिअै जब लगि तत्त न जांनां ।
एक रांम देखा सबहिन मैं कहै कबीर मन मांनां ।।२।।

हे राम, मुझे तारकर कहाँ ले जाओगे ? वह बैकुंठ, कहो तो सही, कैसा

है जिसे तुम कृपा कर मुझे दोगे ? अगर तुम मुझे दूर करना चाहते हो तो मुझे मुक्ति बताओ। जब सभी वस्तुओं में एकमेक होकर रम रहे हो तो फिर मुझे क्यों भरमा रहे हो ? तरन-तारन की बात तभी तक कही जाती है जब तक ज्ञान नहीं होता। कबीर कहता है, मैंने तो एक राम को ही सभी में देखा है और मन में उसका विश्वास या यक़ीन भी हो गया है।

(१०)

बहुरि हंम काहेकौ आवहिंगे।
बिछुरै पंच तत्त की रचनां तब हंम रांमहिं पावहिंगे ।।टेक।।
पिरथी का गुन पांनीं सोखा पांनीं तेज मिलावहिंगे।
तेज पवन मिलि पवन सबद मिलि सहज समाधि लगावहिंगे ।।१।।
जैसें वहु कंचन के भूखन एकहिं घालि तवावहिंगे।
ऐसें हम लोक बेद के बिछुरै सुन्निहिं मांहि समावहिंगे ।।२।।
जैसें जलहिं तरंग तरंगिनीं ऐसें हंम दिखलावहिंगे।
कहै कबीर स्वांमीं सुखसागर हंसहिं हंस मिलावहिंगे ।।३।।

फिर इस संसार में काहे को आवेंगे ? पाँच तत्व की रचना जब खतम हो जाएगी तब हम राम को पा जाएँगे। पृथ्वी का गुण पानी सोख लेगा और पानी को अग्नि के गुण तेज में मिलाएँगे। तेज को पवन में मिलाकर और पवन को आकाश के गुण शब्द में मिलाकर हम सहज समाधि लगा लेंगे। जैसे कंचन के बहुत से गहने एक ही बर्तन में डालकर तपाए जाते हैं और अंत में वे सोना हो जाते हैं, उसी प्रकार हम लोक वेद से बिछुड़ने पर शून्य में ही समा जाएँगे। जैसे जल में लहर-लहरियाँ होती हैं ऐसे ही हम भी परमात्मा में मिलकर उसी की तरह दिखलाई पड़ेंगे। कबीर कहता है,

हमारा स्वामी आनन्द का खजाना है; हम अपने हंस को (आत्मा को) उस हंस (परमात्मा) से मिलावेंगे।

कबीर ने इस पद में लययोग के बारे में बतलाया है। पुराणों में भी अक्सर इसकी चर्चा मिल जाएगी। केवल भारत में ही नहीं, अन्य देशों के लोगों में भी कभी-कभी ये बातें ज्यों की त्यों मिल जाती हैं। अरिस्टाटल सिकन्दर के नाम अपनी एक चिट्ठी में लिखता है, "पृथिवी को जल, जल को वायु, वायु को अग्नि और अग्नि को आकाश (ईथर) घेरे हुए है। इसलिए सबसे ऊँचा स्थान देवताओं का स्थान है और सबसे नीचा पानी के जानवरों का घर है।"—अलबेरूनी का भारत, अनुवादक संतराम।

(११)

डगमग छांड़ि दे मन बौरा।
अब तौ जरें मरें बनि आवै लीन्हौ हाथि सिंधौरा ।।टेक।।
होइ निसंक मगन होइ नाचै लोभ मोह भ्रम छांड़ै।
सूरा कहा मरन तैं डरपै सती न संचै भांड़ै ।।१।।
लोक बेद कुल की मरजादा इहै गले मैं फांसी।
आधा चलि करि पाछैं फिरिहौ होइ जगत मैं हांसी ।।२।।
यह संसार सकल है मैला रांम कहैं ते सूचा।
कहै कबीर नांउं नहिं छांड़ौं गिरत परत चढ़ि ऊंचा ।।३।।

ऐ पगले मन, अब डगमग छोड़ दे। अब तो जरने-मरने से ही काम बनेगा क्योंकि तूने सती की भाँति हाथ में सिंधौरा ले लिया है। निडर होकर मगन मन नाच, लोभ-मोह का भ्रम छोड़ दे। सूरमा क्या मरने से डरता है? सती गृहस्थी के भाँडे नहीं संजोती। लोक और शास्त्र की मर्यादा—यही

तो गले का बन्धन है। आधा चलकर पीछे लौटेगा तो तेरी जगहँसाई होगी। संसार सारा का सारा भ्रष्ट है—जो राम का स्मरण करता है, केवल वही पवित्र है। कबीर कहता है, राम नाम मत छोड़; गिरते-पड़ते ऊँचे चढ़ता चल !

कबीर ने सती और सूरमा को भक्त का आदर्श माना है (जैसे तुलसी ने चातक को माना है) जरना-मरना जिनका धर्म है।

(१२)

बोलनां का कहिए रे भाई।
बोलत बोलत तत्त नसाई ।।टेक।।
बोलत बोलत बढ़ै बिकारा। बिनु बोलें क्या करहि बिचारा ।।१।।
संत मिलहिं कछु सुनिअै कहिअै। मिलहिं असंत मस्टि करि रहिअै ।।२।।
ग्यांनीं सौं बोलें उपकारी। मूरिख सौं बोलें झखमारी ।।३।।
कहै कबीर आधा घट बौलै। भरा होइ तौ कबहुं न बौलै ।।४।।

अरे भाई, बोलने का क्या कहा जाय? बोलते-बोलते तो तत्व नसा जाता है (नष्ट हो जाता है)। बोलते-बोलते विकार बढ़ता है, लेकिन बिना बोले विचार क्या किया जाए? अच्छा यही है कि संत मिलें तो कुछ कहा-सुना जाए; असंत मिल जाए तो चुप्पी साध लेनी चाहिए। ज्ञानी से बोलने में भलाई है, मूर्ख से बोलने में झखमारी (झख मारना) होती है। कबीर कहता है, आधा भरा हुआ घड़ा (ज्ञान से रीता आदमी) बोलता है (बड़बड़ाता है); भरा हो (पूरा ज्ञानी हो) तो कभी नहीं बोलता।

(१३)

झूठे तन कौं क्या गरबावै ।
मरै तौ पल भरि रहन न पावै ।।टेक।।
खीर खांड घृत पिंड संवारा । प्रांन गएं लै वाहरि जारा ।।१।।
जिहिं सिरि रचि बांधत पागा । सो सिरु चंचु संवारहिं कागा ।।२।।
हाड़ जरै जैसै लकड़ी झूरी । केस जरै जैसे त्रिन कै कूरी ।।३।।
कहै कबीर नर अजहुं नरी जागै । जम का डंड मूंड़ महिं लागै ।।४।।

झूठे तन का क्या घमण्ड करता है, जो मर जाता है तो पल भर भी नहीं रहने पाता (मरते ही लोग मुर्दे को हटाने की बात सोचने लग जाते हैं)। खीर, खांड, घी से जिस शरीर को पाला-पोसा, प्राण छूट जाने पर उसी को वाहर ले जाकर जलाते हैं। जिस सिर पर सँवार-सँवार कर पगड़ी बाँधते थे, उस सिर को कौवे अपनी चोंच से सँवारते हैं (नोच डालते हैं)। जलाते समय हाड़ ऐसे जलते हैं जैसे सूखी लकड़ी और केश ऐसे जलते हैं जैसे फूस की ढेरी जले। कबीर कहता है, प्राणी यह सब जानकर भी नहीं चेतता; तब तक यमराज का डंडा सिर पर आ बरसता है अर्थात् मौत आ धमकती है।

(१४)

मन रे अहरखि वाद न कीजै ।
अपनां सुक्रितु भरि भरि लीजै ।।टेक।।
कुंभरा एक कमाई माटी बहु विधि बांनीं लाई ।
काहू महिं मोती मुकताहल काहू ब्याधि लगाई ।।१।।
काहू दीन्हां पाट पटंबर काहू पलंघ निवारा ।
काहू गरो गोंदरी नांहीं काहू सेज पयारा ।।२।।

सूमहि धन राखन कौं दीया मुगध कहै यहु मेरा ।
जम का डंडु मूंड़ महि लागै खिन महि निबेरा ।।३।।
कहै कबीर सुनौं रे संतौ मेरी मेरी झूठी ।
चिरकुट फारि चुहाड़ा लै गयौ तनीं तागरी छूटी ।।४।।

हे मन, जीविका या रोज़ी के लिए बेकार बखेड़ा न करना चाहिए, केवल अपनी अच्छी करनी भरनी चाहिए । कुंभार ने एक ही मिट्टी कमाकर पीली मिट्टी द्वारा उसमें अनेक रंग उरेहे, किसी में मोती मुक्ताहल लगा दिए, किसी में व्याधि लगा दी (विधाता ने एक ही तत्व से तरह-तरह की चीजें बनाईं और कर्मानुसार सबके भाग्य भी अलग-अलग बनाए) । किसी को उसने रेशमी कपड़े दिए, किसी को निवाड़ की सेज दी । इसके विपरीत किसी को सड़ी-गली गोनरी या गूदड़ी भी नहीं दी और किसी को पुवाल की सेज दी । सूम को धन इकट्ठा करने को दिया, मूर्ख कहता है, यह मेरा धन है; लेकिन जब यमराज का डंडा सिर पर लगता है (मृत्यु आ दबोचती है) तब क्षणमात्र में ही इसका निबटारा हो जाता है कि असल में वह धन किसका है । कबीर कहता है, ऐ संतो सुनो, 'मेरी' 'मेरी' करना बेकार है (संसार में कुछ भी किसी का नहीं) । यहाँ तक कि मृत्यु के बाद मुर्दे का चिरकुट भी नोच-खसोट कर डोम ले जाता है और करधनी तथा कमर का वस्त्र तक यहीं छूट जाता है ।

शव को जलाते समय उसके सभी बंधन खोले जाते हैं अतः अन्तिम समय में तनी-तागड़ी भी उतार लेते हैं—यही कवि का मूल भाव है ।

(१५)

हरि नांव न जपसि गंवारा ।
क्या सोचहि बारंबारा ।।टेक।।

पंच चोर गढ़ मंझा । गढ़ लूटहिं दिवसउ संझा ।।
जउ गढ़पति मुहकम होई । तौ लूटि सकै नां कोई ।।१।।
अंधियारै दीपक चहिअै । तब वस्तु अगोचर लहिअै ।
जब वस्तु अगोचर पाई । तब दीपक रहा समाई ।।२।।
जौ दरसन देखा चहिअै । तौ दरपन मांजत रहिअै ।।
जब दरपन लागै काई । तब दरसन किया न जाई ।।३।।
का पढ़िएं का गुनिएं । का बेद पुरांनां सुनिएं ।।
पढ़ें गुनें क्या होई । जउ सहज न मिलिअौ सोई ।।४।।
कहै कबीर मैं जांनां । मैं जांनां मन पतियांनां ।।
पतियांनां जौ न पतीजै । तौ अंधे कौं का कीजै ।।५।।

ऐ गँवार, हरि का नाम नहीं जपता ? क्या बारंबार सोच रहा है ? गढ़ (शरीर) में पाँच चोर (पंच विकार अथवा पंच ज्ञानेन्द्रियाँ) हैं जो उसे रात-दिन लूट रहे हैं (हमेशा शरीर की ताकत कम कर रहे हैं)। अगर गढ़पति (मन) मुस्तैद हो तो (गढ़ को) कोई भी न लूट सके। अंधकार में दीपक (ज्ञान-प्रकाश) चाहिए, तभी दिखाई न देने वाली वस्तु (परमात्मा) मिल सकती है। जब अगोचर वस्तु मिल जाती है, तब दीपक का काम ख़तम हो जाता है (तब ज्ञान की ज़रूरत भी नहीं रह जाती है)। अगर दर्शन करना चाहते हो तो दर्पण को माँजते रहना (निर्मल रखना) चाहिए। जब दर्पण में काई लग जाती है (चित्त में विकार आ जाते हैं) तब चेहरा नहीं देखा जा सकता अपना (सच्चा रूप पहचाना नहीं जा सकता)। पढ़ने-गुनने से क्या और वेद-पुराण सुनने से क्या ? पढ़ने-गुनने से क्या होता है, अगर वह (परमात्मा या ज्ञान) सहज ही न मिल गया ? कबीर कहता है, मैं तो असली बात जान गया; मैं जान गया—ऐसा मेरा मन मान गया। प्रतीति जिसको हो गई है यदि उसका विश्वास कोई न करे तो उस अंधे

(विश्वासहीन, विवेकहीन) का क्या किया जाय ?

(१६)

मेरी मेरी करतां जनम गयौ ।
जनम गयौ परि हरि न कह्यौ ।।टेक।।
बारह बरस बालपन खोयौ बीस बरस कछु तप न कियौ ।
तीस बरस तैं रांम न सुमिरचौ फिरि पछितांनां बिरिध भयौ ।।१।।
सूखे सरवरि पालि बंधावै लूनें खेति हठि बारि करै ।
आयौ चोर तुरंगहिं लै गयौ मोहड़ी राखत मुगध फिरै ।।२।।
सीस चरन कर कंपन लागे नैंन नीरु असराल बहै ।
जिभ्या बचन सूध नहिं निकसै तब सुक्रित की बात कहै ।।४।।
कहै कबीर सुनहु रे संतौ धन संच्यौ कछु संगि न गयौ ।
आई तलब गोपालराइ की माया मंदिर छांड़ि चल्यौ ।।४।।

'मेरी-मेरी' करते जीवन बीत गया । जीवन बीत गया, लेकिन हरि का नाम न कहा । आयु के बारह वर्ष तक बालपन में खो दिया, बीस वर्ष तक कुछ तपस्या न की । तीस वर्ष तक राम का सुमिरन न किया, फिर पछताने लगा कि अब बूढ़ा हो गया हूँ । तालाब सूख जाने पर अब तू उसकी बंधानी बँधाता है; लुने हुए खेत में ज़बरदस्ती रोक लगाता है (अर्थात् अवसर चूक जाने पर कमी पूरा करने का असफल प्रयत्न करता है) । चोर आया, घोड़ा चुरा ले गया, लेकिन तू मूर्ख उसकी मोहड़ी रखाता फिरता है । बुढ़ापे के कारण जब शीश, चरण और कर काँपने लगे, नेत्रों से निरन्तर जल गिरने लगा, जीभ से शुद्ध वचन नहीं निलकता, तब तू अच्छी करनी की बात करता है । कबीर कहता है, ऐ सन्तो सुनो, लोगों ने धन इकट्ठा किया, लेकिन अन्त

समय कुछ भी साथ न गया। गोपालराय की बुलाहट ज्यों ही आई कि धन-धाम सब छोड़कर चल पड़ा।

(१७)

मन रे संसार अंध कुहेरा।
सिरि प्रगटा जम का पेरा ।।टेक।।
बुत पूजि पूजि हिंदू मूए तुरुक मुए हज जाई ।।
जटा धारि जोगी मूए तेरी गति किनहुं न पाई ।।१।।
कवित पढ़े पढ़ि कविता मूए कापड़ी कैदारै जाई।
केस लूंचि लूंचि मुए बरतिया इनमैं किनहुं न पाई ।।२।।
धन संचंते राजा मूए गड़िले कंचन भारी।
बेद पढ़े पढ़ि पंडित मूए रूप देखि देखि नारी ।।३।।
रांम नांम बिनु सभै बिगूते देखहु निरखि सरीरा।
हरि के नांम बिनु किनि गति पाई कहै जुलाह कबीरा ।।४।।

ऐ मन, यह संसार अन्ध कुहरा है, लेकिन सिर पर यम का फंदा साफ़ दिखलाई पड़ता है। मूर्ति पूज-पूजकर हिन्दू मर गए और तुर्क हज जा-जाकर मर गए। योगी जटा धारण कर-कर मर गए; किन्तु तेरा पता किसी को नहीं मिला। कवि लोग कवित्त पढ़-पढ़ कर मर गए, कापड़ी संन्यासी केदार जा-जाकर; केश नुचवाते-नुचवाते जैन व्रती मर गए—इनमें भी कोई तुम्हें न पा सका। धन बटोरते-बटोरते राजा मर गए, भारी कंचन राशि भूमि में गड़ी पड़ी रह गई। वेद पढ़-पढ़कर पंडित मर गए, रूप देख-देखकर अपनी खूबसूरती पर नाज़ करने वाली स्त्रियाँ मर गईं। राम नाम बिना सभी चौपट हो गए—अपने ही शरीर को भलीभाँति निरख-परख कर इस

बात को समझ लो। हरि के नाम बिना भला किसने अच्छी गति पाई—ऐसा जुलाहा कबीर कह रहा है।

(१८)

जतन बिनु मिरगनि खेत उजारे।
टारे टरत नहीं निस बासुरि बिडरत नांहि बिडारे ।।टेक।।
अपनें अपनें रस के लोभी करतब न्यारे न्यारे।
अति अभिमांन बदत नहिं काहू बहुत लोग पचि हारे ।।१।।
बुधि मेरी किरखी गुर मेरौ बिझुका अक्खिर दोइ रखवारे।
कहै कबीर अब चरनन देइहौं बेरियां भली संभारे ।।२।।

बिना जतन (साधना) किए पशुओं (पंच विकार) ने खेत (शरीर) उजाड़ दिया। रात-दिन हटाए हटते नहीं, बिदकाने से बिदकते नहीं। सब अपने-अपने स्वाद के लोभी हैं, सब के कारनामे अलग-अलग हैं (कोई फ़सल तोड़ देता है, कोई ज़मीन खोद देता है)। बहुत से लोग हैरान हो गए, किन्तु अधिक अभिमान के कारण ये किसी को सेंटते नहीं। किन्तु मेरी खेती बुद्धि की है, गुरु उसमें बिझूका हैं, राम नाम के दो अक्षर रखवाले हैं। कबीर कहता है, मैंने ठीक समय पर सँभाल कर ली है, अब खेती चरने नहीं दूँगा। बिझूका—पक्षियों या पशुओं को बिदकाने या डराने के लिए खेत में उल्टी टाँगी हुई हाँडी या आदमी की तरह का पुतला जिसे 'धोख' या 'धोखा' भी कहते हैं।

(१९)

काया बौरी चलत प्रांन काहे रोई।
कहत हंस सुन काया बौरी मोर तोर संग न होई ।।टेक।।

काया पाइ बहुत सुख कीन्हां नित उठि मलि मलि धोई ।
सो तन छिया छार होइ जैहै नांउं न लेइ है कोई ।।१।।
सिव सनकादि आदि ब्रह्मादिक सेस सहस मुख जोई ।
जिन जिन देह धरी त्रिभुवन में थिर न रहा है कोई ।।२।।
पाप पुन्नि दोइ जनम संघाती समुझि देखु नर लोई ।
कहै कबीर प्रभु पूरन की गति बूझै बिरला कोई ।।३।।

पगली काया प्राण निकलते समय क्यों रोती है ? हंस (आत्मा) कहता है—ऐ पगली काया, सुन, मेरा-तेरा संग नहीं हो सकता । शरीर पाकर मैंने (अर्थात् जीव ने) बहुत सुख किया, नित्य उठकर उसे मल-मलकर धोया, किन्तु वह शरीर छिया-छार हो जाएगा और उसका नाम भी कोई न लेगा । शिव-सनकादि और ब्रह्मादिक, जो-जो दुनिया बनाने वाले हैं, और शेष जिसके हजार मुख हैं—जिस-जिसने त्रिभुवन में देह धारण की, कोई थिर न रहा । पाप-पुण्य यही दोनों (जीवनसखा) है । (शरीर नहीं) । हे नर लोगो, इसे समझ देखो । कबीर कहता है, पूर्ण प्रभु की गति कोई विरला ही समझता है ।

(२०)

हंम न मरैं मरिहै संसारा ।
हंमकौं मिला जिआवनहारा ।।टेक।।
साकत मरहिं संत जन जीवहिं । भरि भरि रांम रसाइन पीवहिं ।।१।।
हरि मरिहै तौ हंमहूं मरिहै । हरि न मरै हंम काहेकौ मरिहै ।।२।।
कहै कबीर मन मनहिं मिलावा । अमर भए सुखसागर पावा ।।३।।

हम नहीं मरेंगे, संसार मर-मर जाएगा; क्योंकि हमको जिन्दगी देने

वाला राम मिल गया है। शाक्त मर जाता है, सन्त लोग अमर हो जाते हैं, क्योंकि वे राम-रसायन (जो जीवन देनेवाली औषधि है) छक कर पीते हैं। हरि मरेगा तो हम भी मरेंगे। हरि न मरेगा तो हम काहे को मरेंगे? कबीर कहता है, हमने अपना मन उन्मन में (अथवा मन के मन अर्थात् परमात्मा में) मिला दिया है; (इस प्रकार) हम तो अमर हो गए क्योंकि हमने सुखसागर प्राप्त कर लिया है।

(२१)

अब हंम सकल कुसल करि मांनां।
सांति भई जब गोबिंद जांनां ।।टेक।।
तन महिं होती कोटि उपाधि। उलटि भई सुख सहज समाधि ।।१।।
जम तैं उलटि भया है रांम। दुख बिनसे सुख किया बिसरांम ।।२।।
बैरी उलटि भए है मीता। साकत उलटि सजन भए चीता ।।३।।
आपा जांनि उलटिलै आप। तौ नहिं ब्यापै तीन्यूं ताप ।।४।।
अब मन उलटि सनातन हूवा। तब आंनां जब जीवत मूवा ।।५।।
कहै कबीर सुख सहजि समावउं। आप न डरउं न और डरावउं ।।६।।

अब मुझे सब जगह कुशल ही कुशल दिखाई दे रहा है, क्योंकि जब गोविन्द को जान लिया तब स्थिरता आ गई। शरीर में जो करोड़ों व्याधियाँ थीं वे उटल कर सहज समाधि के सुख में बदल गईं। यम (मृत्यु का देवता) उटल कर राम (जिलाने वाला) बन गया, दुःख विनष्ट हो गए, सुख में आराम किया। दुश्मन उलट कर दोस्त हो गए, शाक्त उलट कर चित्त से सज्जन हो गए। आत्मस्वरूप को पहचान कर जो अपने मन को उलट ले तो उसे त्रिविध ताप नहीं सताते। अब मन उलट कर अमर हो गया, यह तब

समझा जब जीते जी मर गया (जीवन्मृत हो गया)। कबीर कहता है, मैं सहज सुख में लीन हो गया हूँ, अब न तो किसी से डरता हूँ और न किसी को डराता ही हूँ (भेद-दृष्टि समाप्त हो गई)।

कबीर ने इस पद में मन की साधना का भेद बताया है जिसको उन्होंने पद की आख़िरी दो पंक्तियों में साफ़-साफ़ बताया है। मन की वृत्तियाँ अक्सर बाहर की ओर दौड़ती हैं, उन्हें उनके विषयों से वापस अंदर की ओर मोड़ने को मन का उलटना कहा जाता है। उलट जाने पर, अर्थात् उन्मन हो जाने पर, मन में बड़ी शक्ति आ जाती है और वह सनातन हो जाता है। यह तभी होता है जब कोई जीते जी मर जाए या गीता के शब्दों में स्थितप्रज्ञ हो जाए। गीता में कहा गया है—

यदा संहरते चाऽयं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

अर्थात् जो अपनी इन्द्रियों को उनके विषयों से कछुवे के अंगों की तरह सब ओर से समेट लेता है उसकी बुद्धि स्थिर होती है अर्थात् वह स्थितप्रज्ञ होता है।

(२२)

रामुराय चली बिनावन माहो।
घर छोड़ जाइ जुलाहौ॥टेक॥
गज नव गज दस गज उनइस की पुरिया एक तनाई।
सत सूत दै गंड बहत्तरि पाट लागु अधिकाई॥१॥
गजैं न मिनिअै तोलि न तुलिअै पहजन सेर अढ़ाई।
अढ़ाई में जे पाव घटै तौ करकच कर घरहाई॥२॥

दिन की बेठ खसम सौं बरकस तापर लगी तिहाई ।
भींगी पुरिया घर ही छांड़ी चला जुलाह रिसाई ।।३।।
छोछी नली कांम नहिं आवै लपटि रही उरझाई ।
छांड़ि पसार रांम भजु बउरे कहै कबीर समझाई ।।४।।

रामुराय (माया) माहा बुनाने (कर्म कराने) चली है; किन्तु जुलाहा घर छोड़ कर चला जा रहा है अर्थात् मन कर्मों के जंजाल से ऊब गया है। शरीर का प्रपंच इस प्रकार है: नव गज (नौ नाड़ी) और दस गज (दस इन्द्रियाँ) इस प्रकार उन्नीस गज (उन्नीस कील-काँटों) की एक पुरिया तानी गई (शरीर बना)। फिर सात सूत (सप्त धातु) के बहत्तर गंडे (बहत्तर कोठे) बाँधे गए जिससे इस पुरिया में बड़ा पाट लगा (प्रपंचों का फैलाव बढ़ा)। इस पुरिया (शरीर) को गज से नापा नहीं जा सकता, तराजू पर तौला नहीं जा सकता (शरीर-रचना का रहस्य मालूम नहीं किया जा सकता)। इसमें ढाई सेर की माड़ी (खूराक) लगती है। ढाई सेर में अगर पाव भर भी माड़ी या खूराक कम हो जाए तो घरहाई किचकिच करती है। माड़ी कम लगने से कपड़े का वजन कम उतरता है, इसलिए टोटे के अंदेशे से चुग़लखोर स्त्री (रामुराय) उससे तकरार करती है कि माड़ी कम क्यों लगा दी ? यहाँ यह जान लेना चाहिए कि कुछ मोटिया वस्त्र पहले तौल के हिसाब से बिकते थे। दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि माड़ी लगाते समय अगर वह थोड़ी भी कम पड़ जाए तो घरहाई किचकिच मचाती है कि और मिले कहाँ से ? शरीर की निगाह से मतलब यह हुआ कि ढाई सेर की खूराक में यदि पाव भर की भी कमी पड़े तो इंद्रियों में खलबली मच जाती है। दिन की बेगार खटने से ही (सावधानचित्त होकर साधना करने से ही) मालिक से बरक़्क़त पड़ती है (प्राप्ति होती है, अर्थात् प्रारब्ध कर्मों की वृद्धि होती है। उस पर भी कमाई का तीसरा हिस्सा देना पड़ता है (त्रिविध ताप—तीन हाय—भोगना पड़ता है)। इतने सारे प्रपंचों से ऊब कर

भीगी हुई पुरिया को घर ही छोड़कर जुलाहा खीझ कर भाग चला (शरीर के जंजालों से ऊब कर मन उससे उदास हो चला)। और फिर छूँछी नली से कपड़ा नहीं बुना जा सकता, क्योंकि वह पुरिया में लपट कर उलझ जाती है (छूँछे मन से कर्म नहीं हो सकता, वह अपने आप में ही उलझ-पुलझ कर रह जाता है)। इसलिए कबीर समझाकर कहता है, ऐ बावले, यह पसारा (शरीर का प्रपंच) छोड़कर राम का भजन करो।

रामुराय—पहले वेश्याओं के नाम इसी प्रकार के होते थे (जैसे: परवीनराय, सुजानराय आदि)। कबीर ने वस्तुतः माया के लिए इस नाम का प्रयोग किया है = यह देखो! रामुराय चली है माहा बुनवाने! माहो = एक प्रकार का महीन कपड़ा। गज नव = नौ नाड़ी = १. इड़ा या चन्द्र नाड़ी, २. पिंगला या सूर्य नाड़ी, ३. सुषुम्णा या मध्यनाड़ी, ४. गांधारी, ५. हस्तिजिह्वा (क्रमशः दाहिनी तथा बाईं आँख की नाड़ी), ६. पूषा, ७. पयस्विनी (क्रमशः दाहिने तथा बाएँ कान की नाड़ी), ८. लकुहा, ९. अलम्बुषा (क्रमशः गुदा तथा लिंग नाड़ी)। शरीर के सम्बन्ध में 'नौ नाड़ी बहत्तर कोठों' की बात बहुत पुराने ज़माने से प्रसिद्ध है। गज दस—दस इन्द्रियाँ। सात सूत—सप्त धातु (रक्त, मांस, मज्जा, वसा, अस्थि, शुक्र, रस)। गंड = गाँठ। जुलाहों की बोली में राछ से भरे जाने वाले सूतों के एक-एक गुच्छे को गंडा कहते हैं। गंडों की तादाद जितनी ही ज्यादा होगी, पुरिया उतनी ही चौड़ी होगी। यहाँ सात-सात सूत के बहत्तर गंडे बताए गए हैं। गंड बहत्तर—शरीर की बहत्तर गाँठें या कोठे।

पहजन सेर अढ़ाई—ढाई सेर माड़ी। शरीर की निगाह से ढाई सेर की ख़ूराक। नाश्ता, भोजन आदि सब मिलाकर एक व्यक्ति की प्रतिदिन की ख़ूराक के लिए ढाई सेर की इकाई मानी जाती है। झल्लाहट में लोग कहते हैं: 'अढ़ैया भर चढ़ा लिया (ढाई सेर की खबर ले ली), कामकाज कौड़ी का भी नहीं किया।'

(२३)

रांम सुमिरि नर बावरै ।
तोरी सदा न देहियां रे ।।टेक।।
यहु माया कहौ कौंन की काकै संग लागी रे ।
गुदरी सी उठि जाइगी चित्त चेति अभागी रे ।।१।।
सौनैं की लंका बनीं भइ धूर की धांनीं रे ।
सोइ रावन की साहिबी छिन मांहि बिलांनीं रे ।।२।।
बारह जोजन के बिखै चले छत्र की छहियां रे ।
सोइ जरिजोधन कह गए मिलि माटी महियां रे ।।३।।
कहै कबीर पुकारि कै इहां कोइ न अपनां रे ।
यहु जियरा चलि जाइगा जस रैंनि का सपनां रे ।।४।।

पगले आदमी, राम का स्मरण कर, क्योंकि तेरा शरीर जिस पर तुझे घमंड है सदा नहीं रहने का। यह सम्पत्ति कहो किसकी है और किसके साथ लगी है ? गुदड़ी (बाज़ार) के मेले की तरह इसका मेला भी समाप्त हो जायगा—ऐ अभागे, इसका ज़रा मन में विचार कर। सोने की लंका बनी थी, लेकिन वह भी धूल की धानी हो गई और वह रावण की साहिबी छन भर में बिला गई। बारह योजन तक फैले हुए ठाटबाट के बीच जो छत्र की छाँह में चलता वह दुर्योधन मिट्टी में मिल कर कहाँ चला गया ? कबीर पुकार कर कहता है कि यहाँ कोई भी अपना नहीं है। यह जीव वैसे ही चला जाएगा जैसे रात का सपना बिला जाता है।

(२४)

चारि दिन अपनीं नौबति चले बजाइ ।
उतानैं खटिया गड़िले मटिया संगि न कछु लै जाइ ।।टेक।।

देहरी बैठी मेहरी रोवै द्वारै लगि सगी माइ ।
मरहट लौं सब लोग कुटुंब मिलि हंस अकेला जाइ ।।१।।
वहि सुत वहि बित वहि पुर पाटन बहुरि न देखै आइ ।
कहत कबीर भजन बिन बंदे जनम अकारथ जाइ ।।२।।

चार दिन (चंद दिन) अपनी नौबत बजाकर लोग चल देते हैं, फिर उतानी खाट पर ले जाकर उन्हें मिट्टी में गाड़ दिया जाता है। साथ में कोई कुछ भी नहीं ले जाता। देहली पर बैठकर स्त्री रोती है, दरवाजे तक सगी माता जाती है, मरघट तक सब कुटुम्बी लोग मिल कर जाते हैं—आगे हंस (आत्मा) ही अकेला जाता है; वह पुत्र, वह वित्त, वह पुर-पट्टन फिर लौट कर नहीं देख पाता। कबीर कहता है कि ऐ बंदे, भजन बिना जन्म अकारथ (व्यर्थ) चला जाता है ।

(२५)

मन रे मनहिं उलटि समांनां ।
गुर परसादि अकिलि भई अवरै नातरु था बेगांनां ।।टेक।।
उलटै पवन चक्र खटु भेदे सुरति सुन्नि अनुरागी ।
आवै न जाइ मरै नहिं जीवै ताहि खोजि बैरागी ।।१।।
नियरै दूरि दूरि फुनि नियरै जिनि जैसा करि मांना ।
औलौती का चढ़ा बरेंडै जिनि पीया तिनि जांनां ।।२।।
तेरी निरगुन कथा कवन सौ कहिअ है कोई चतुर बिबेकी ।
कहै कबीर गुर दिया पलीता सो झल बिरलै देखी ।।३।।

मन उलट कर मन में ही समा गया। गुरु की कृपा से मुझे और ही अक्ल

हुई, नहीं तो मैं इस भेद से अपरिचित ही था। पवन को उलटकर अर्थात् साँस को रोककर या प्राणायाम के ज़रिए छः चक्रों का भेदन किया, तब मन शून्य (सहज दशा, उन्मनी अथवा स्थितप्रज्ञता) की ओर बढ़ा अर्थात् मन की उन्मनावस्था हो गई। ऐ वैरागी, उसकी खोज करो जिससे आवागमन तथा जीवन-मरण से मुक्ति मिल जाय। नज़दीक रहते हुए भी वह दूर है और दूर रहते हुए भी नज़दीक है—जिसने जैसा उसे समझ लिया। ओरी का पानी बँडेर चढ़ जाय तो उसका स्वाद वही जानता है जो उसे पीता है अर्थात् उस स्थिति का आनन्द वही जानता है जो मन को उलटने की साधना जानता है। यह तेरी निर्गुण कथा किससे कही जाय, है कोई ऐसा कुशल और ज्ञानी? कबीर कहता है कि गुरु ने जो पलीता दिया उसकी फुलझड़ी या रोशनी विरले ही देखते हैं (अर्थात् इस पलीते में ऐसी फुलझड़ी छूटती है जो अनोखी है—दूसरी फुलझड़ियाँ इस तरह की नहीं होतीं। मतलब है: इस प्रकार की साधना से अनोखे दृश्य देखने को मिलते हैं)।

ओलती का चढ़ा बरेडै—'ओलती' या 'ओरी' छप्पर के उस भाग को कहते हैं जिससे उसके दोनों ओर पानी टपकता है। जिस धरन या बल्ली पर छप्पर बीचोंबीच टँगा रहता है उसे लोग बँड़ेर या 'बलींडा' कहते हैं। छप्पर का पानी बँड़ेर से ओरी की ओर दौड़ता है, ठीक उसी प्रकार मन की वृत्तियाँ बाहर की ओर दौड़ती हैं। कबीर ओरी का पानी बँड़ेर पर चढ़ाने को कहते हैं, जिसका मतलब मन को उलटना अर्थात् अन्तर्मुखी करना है।

(२६)

मन मोर रहटा रसनां पिउरिया।
हरि कौ नांउं लै काति बहुरिया ॥टेक॥
चारि खूंटी दोइ चमरख लाई। सहजि रहटवा दियौ चलाई ॥१॥

छौ मास तागा बरिस दिन कुकुरी। लोग बोलैं भल कातल बपुरी ॥२॥
कहै कबीर सूत भल काता। रहटा नहीं परम पद दाता ॥३॥

मन मेरा चर्खा है, जीभ पूनी है जिससे ऐ वहू (जीवात्मा) तू हरि नाम-रूपी तागा कात (अर्थात् हरिनाम-स्मरण कर)। चार खूँटियाँ लगाकर (अन्तःकरण चतुष्टय पर नियन्त्रण कर) और दो चमरख लगा कर, (इड़ा-पिंगला अथवा आने-जाने वाली साँस पर काबू पाकर) सहज ही इस मन-रूपी चर्खे को चला। छः महीना सूत काता (मन एकाग्र किया) और बरस दिन (बारह महीने) उसे अंटी पर लपेटा (मन को अन्दर की ओर मोड़ा) तब लोग बोले कि इस बेचारी (जीवात्मा) ने अच्छा सूत काता (अच्छी नाम-साधना की)। कबीर कहता है कि इस प्रकार हमने बढ़िया सूत काता (अच्छी साधना की)। अतः यह चर्खा साधारण चर्खा नहीं, परमपद देने वाला है (अर्थात् मन साधारण वस्तु नहीं, बल्कि मुक्ति देने वाला है)।

रहटा = सूत कातने का चर्खा, जिसे कबीर ने मन बताया है, क्योंकि चर्खा और मन दोनों चक्कर काटते हैं। चार खूँटी—चर्खे में चार खूँटियाँ लगती हैं—दो पीछे वाले बड़े पहिए का धुरा टेकने के लिए और बाकी दो आगे की ओर तकुए को सँभालने के लिए। असल में चार खूँटे अंतःकरण चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) हैं। चमरख = चमड़े की वह चकती जिस पर तकुआ या सूत कातने का लोहे का नुकीला छड़ टिका रहता है। दोनों खूँटियों पर चमरख लगाए जाते हैं। योग की निगाह से ये दोनों चमरख इड़ा-पिंगला नाड़ियाँ हैं। मन स्थिर करने के लिए प्राण (पवन) भी स्थिर करना ज़रूरी है, और ऐसा तभी होता है जब इड़ा-पिंगला दोनों एकदिल होती हैं; क्योंकि इन दोनों नाड़ियों का सम्बन्ध नाक के दोनों छेदों से माना जाता है। कुकुरी—कुकुरी वह अंटी होती है जिस पर तकले से सूत वापस उतारते हैं। अतः योग में इसका अर्थ होगा : जिस प्रकार सूत को अंटी पर

उतारते हैं उसी प्रकार बारह पँखुड़ियों वाले हृदय कमल या अनाहत चक्र में ध्यान लगाना चाहिए, जहाँ प्रभु का निवास है।

(२७)

लोका तुम ज कहत हौ नंद कौ नंदन नंद कहौ धूं काकौ रे।
धरनि अकास दोऊ नहिं होते तब यहु नंद कहाँ थौ रे ।।टेक।।
लख चौरासी जीअ जोनि महिं भ्रमंत भ्रमंत नंद थाकौ रे।
भगति हेतु औतार लियौ है भागु बड़ो बपुरा कौ रे ।।१।।
जनमैं मरै न संकटि आवै नांव निरंजन जाकौ रे।
दास कबीर कौ ठाकुर ऐसौ जाकौ माई न बापौ रे ।।२।।

लोगो, तुम जो कहते हो कि वह कृष्ण नंदनंदन है तो बताओ सही नंद किसका पुत्र है? कल्पांतर के समय जब धरती और आकाश दोनों नहीं थे, तब यह नंद कहाँ था, जिसने कृष्ण अर्थात् परब्रह्म को उत्पन्न किया? चौरासी लाख योनियों में चक्कर काटते-काटते नंद थक गया; भक्ति के कारण उसके घर भगवान ने अवतार लिया—उस बेचारे के यही बड़े भाग्य! जो जनमता—मरता नहीं, न संकट में पड़ता है और जो निरंजन (निराकार) है—ऐसा कबीरदास का स्वामी है, जिसके न माँ है न बाप।

(२८)

मोहिं बैराग भयौ।
यहु जिउ आइ रे कहां गयौ ।।टेक।।
आकासि गगनु पातालि गगनु है दह दिसि गगनु रहाईले।

आनंद मूल सदा पुरखोतम घट विनसै गगनु न जाईले ।।१।।
पंच तत्त मिलि काया कीनीं तत्त कहां तैं कीनु रे ।
करमवद्ध तुम जीउ कहत हौ करमहिं किन जिउ दीनु रे ।।२।।
हरि महि तनु है तन महिं हरि है सरब निरतंरि सोइ रे ।
कहै कबीर हरि नांउं न छांड़उं सहजैं होइ सु होइ रे ।।३।।

मुझे यह सोच-सोचकर संसार से विराग हो गया कि यह प्राण आकर फिर कहाँ समा जाता है ? आकाश में अर्थात् ऊपर गगन है, पाताल में (नीचे) गगन है—दसों दिशाओं में गगन ही है। इसी प्रकार वह पुरुषोत्तम (परमात्मा) भी सदैव रहने वाला और आनन्दनिधान है; घड़ा विनष्ट हो जाता है लेकिन घड़े का आकाश (घटाकाश) विनष्ट नहीं होता (वह बड़े आकाश में समा जाता है)। पाँच तत्व मिलकर शरीर बनाते हैं, लेकिन सोचो कि तत्व कहाँ से बनाए गए ? तुम जीव को कर्म में बँधा हुआ कहते हो, लेकिन सोचो कि जीव को कर्म किसने दिए ? अर्थात् परमात्मा ने ही तत्व बनाए और उसी ने कर्मों का जाल रचा। परमात्मा में शरीर है (जीव परमात्मा पर टिका है), शरीर में परमात्मा है—वही सब जगह अखण्ड रूप से समाया है। कबीर कहता है, ऐसे हरि का नाम सहज ही नहीं छोड़ूँगा—होने को चाहे जो कुछ हो।

(२९)

कबीरा बिगरचौ रांम दुहाई ।
तुम्ह जिनि बिगरौ मेरै भाई ।।टेक।।
चंदन के ढिग बिरिख जु भैला । बिगरि बिगरि सो चंदन ह्वैला ।।१।।
पारस कौं जे लोह छिवैला । बिगरि बिगरि सो कंचन ह्वैला ।।२।।

गंगा मैं जे नीर मिलैला । बिगरि बिगरि गंगोदिक ह्वैला ।।३।।
कहै कबीर जे रांम कहैला । बिगरि बिगरि सो रांमहि ह्वैला ।।४।।

राम दुहाई, कबीर तो विगड़ गया; ऐ मेरे भाई, तुम मत विगड़ो ! ! चन्दन के पास जो वृक्ष हुआ वह विगड़ते-विगड़ते चन्दन हो गया । पारस मणि को जो लोहा छूता है, वह विगड़ते-विगड़ते सोना हो जाता है । गंगा में जो जल मिलता है, वह विगड़ते-विगड़ते गंगाजल हो जाता है । कबीर कहता है कि इसी प्रकार जो राम कहता है वह विगड़-विगड़कर राम ही हो जाता है ! !

(३०)

आसन पवन दूरि करि रउरा ।
छांड़ि कपट नित हरि भजि बौरा ।।टेक।।
का सींगी मुद्रा चमकाएं । का बिभूति सब अंग लगाएं ।।१।।
सो हिंदू सो मूसलमांन । जिसका दुरुस रहै ईमांन ।।२।।
सो जोगी जो धरै उनमनीं ध्यांन । सो ब्रह्मां जो कथै ब्रह्म गियांन ।।३।।
कहै कबीर कछु आंन न कीजै । रांम नांम जपि लाहा लीजै ।।४।।

ऐ योगी, अपना आसन-प्राणायाम का जंजाल दूर करो और कपट छोड़ कर ऐ वावले, नित्य हरि का भजन करो । सींगी और मुद्रा चमकाने से क्या और सारे शरीर में ख़ाक लगाने से क्या ? वही सच्चा हिन्दू और वही सच्चा मुसलमान है जिसका ईमान दुरुस्त रहे । (क्योंकि धर्म चाहे जो हो उसमें चरित्र पर ही वल दिया जाता है—वही धर्म की असली आत्मा है) । योगी वह है जो उन्मनी ध्यान करे; और ब्राह्मण वह है जो ब्रह्मज्ञान कहे । कबीर कहता है कि और कुछ नहीं करना चाहिए, केवल राम नाम जप

कर जीवन का लाभ लेना चाहिए ।

(३१)

सार सुख पाइअै रे ।
रंगि रवहु आतमांरांम ।।टेक।।
बनहिं बसें का कीजिअै जौ मन नहीं तजै बिकार ।
घर बन समसरि जिनि किया ते बिरला संसार ।।१।।
का जटा भसम लेपन किएं कहा गुफा मैं बास ।
मन जीतें जग जीतिअै जौ बिखिया तें रहै उदास ।।२।।
काजल देइ सभै कोई चखि चाहन मांहि बिनांन ।
जिनि लोइन मन मोहिया ते लोइन परवांन ।।३।।
कहै कबीर क्रिया भई गुर ग्यांन कहा समझाइ ।
हिरदै स्री हरि भेटिया अब मन अनत न जाइ ।।४।।

आत्माराम के रंग में रँग जाओ, उसी से ऐ प्राणी, सच्चा सुख पाया जाता है । वन में वस कर क्या किया जाय, यदि मन विकार नहीं छोड़ता ? घर और वन को जिन्होंने समान समझ लिया, ऐसे लोग संसार में विरले ही हैं । जटा वढ़ाने से क्या, भस्म लगाने से क्या, गुफा में वास करने से क्या ? मन जीतने से जग जीता जाता है—यदि कोई विषयों से उदासीन रह सके । सव कोई आँखों में काजल देते हैं, देखने के ढंग में भी ख़ासियत हो सकती है, किन्तु जिन आँखों से मन मुग्ध हो जाय वही आँखें अच्छी मानी जाती हैं । कवीर कहता है, कि गुरु की कृपा हुई, उसने ज्ञान समझा कर कहा जिससे मैंने हृदय में ही श्रीहरि को भेट लिया । अव मेरा मन दूसरी जगह नहीं जाता ।

(३२)

अल्लह रांम जिऊं तेरै नांईं ।
बंदै ऊपरि मिहरि करौ मेरै सांई ।।टेक।।
क्या लै मूड़ी भुइं सौं मारें क्या जल देह न्हवाए ।
खून करै मिसकीन कहावै गुनही रहै छिपाएं ।।१।।
क्या ऊजू जप मंजन कीएं क्या मसीति सिरु नाए ।
दिल महिं कपट निवाज गुजारै क्या हज काबै जाएं ।।२।।
बांह्मन ग्यारसि करै चौबीसौं काजी महं रमजांनां ।
ग्यारह मास कहौ क्यूं खाली एकहि मांहि नियांनां ।।३।।
जौ रे खुदाइ मसीति बसतु है और मुलुक किस केरा ।
तीरथि मूरति रांम निवासी दुहु महिं किनहुं न हेरा ।।४।।
पूरब दिसा हरी का बासा पच्छिमि अलह मुकांमां ।
दिल महिं खोजि दिलै दिलि खोजहु इहंईं रहीमां रांमां ।।५।।
जेते औरति मरद उपानें सो सभ रूप तुम्हारा ।
कबीर पुंगरा अलह रांम का सोइ गुर पीर हमारा ।।६।।

ऐ अल्लाह ! ऐ राम ! मैं तेरे नाम पर जीता हूँ । ऐ मेरे मालिक ! सेवक के ऊपर दया करो । सिर को बारम्बार जमीन पर पटकने से क्या और जल में शरीर को नहलाने से क्या ? खून करता है (जीवहिंसा करता है) और नम्र भी कहलाता है; असली हुनर तो अन्दर ही छिपा रहता है । उजू से क्या; और जप-मज्जन करने से या मस्जिद में सिर नवाने (सिजदा पढ़ने) से क्या ? दिल में कपट की नमाज़ पढ़ता है तो हज-काबे जाने से क्या ? ब्राह्मण चौबीसों एकादशी व्रत करता है और मुल्ला रमज़ान महीने का व्रत रखता है । बताओ तो सही, ग्यारह महीने अच्छाई से खाली क्यों हो गए, और एक ही महीने में सारा फल क्यों भर गया ? भाई, यदि खुदा

मस्जिद में ही रहता है तो बाकी सारा मुल्क किसका है ? हिन्दू के अनुसार राम तीर्थ और मूर्ति का निवासी है, किन्तु दोनों में उसको किसी ने न देखा। पूर्व दिशा (जगन्नाथपुरी ?) में हरि का निवास (हिन्दुओं के अनुसार) और पश्चिम (क़ाबे) में अल्लाह का मुकाम है (मुसलमानों के अनुसार); किन्तु ऐ लोगो, दिल में ही खोजो, दिल ही में खोजो; यहीं रहीम है, यहीं राम है—पूर्व और पश्चिम में नहीं। जितने भी स्त्री-पुरुष पैदा किये गए हैं, सब तुम्हारे ही रूप हैं। कबीर अल्लाह और राम का छौना (बालक) है—वही हमारा गुरु है, वही हमारा पीर है।

(३३)

मेरी जिभ्या बिस्नु नैंन नाराइन हिरदै बसहि गोबिंदा।
जम दुवार जब लेखा मांगै तब का कहसि मुकुंदा ॥टेक॥
तूं बांह्मन मैं कासी का जोलहा चीन्हि न मोर गियानां।
तैं सब मागे भूपति राजा मोरै रांम धियानां ॥१॥
पूरब जनम हम बांह्मन होते ओछे करम तप हीनां।
रांम देव की सेवा चूका पकरि जुलाहा कीन्हां ॥२॥
हंम गोरू तुम गुआर गुसांई जनम जनम रखवारे।
कबहूं न पार उतारि चराएहु कैसे खसक हमारे ॥३॥
भौ बूड़त कछु उपाइ करीजै जौं तरि लंघै तीरा।
रांम नांम जपि भेरा बांधौ कहै उपदेश कबीरा ॥४॥

मेरी जीभ पर विष्णु है, नयनों में नारायण हैं, हृदय में गोविन्द निवास करते हैं। यम दरवाजे पर जब लेखा माँगने लगा तब तू क्या मुकुन्द कहता है (मुकुन्द का नाम लेता है) ? तू ब्राह्मण है, मैं काशी का जुलाहा हूँ; तू

मेरा ज्ञान नहीं जानता। तूने सब सांसारिक राजा-महाराजाओं से याचना की, मेरा सिर्फ़ राम पर ध्यान है। पूर्वजन्म में मैं ब्राह्मण था—जब कि मेरे भाग्य ओछे हो गए थे और मैं तपस्या से हीन हो गया था। फिर रामदेव की सेवा में चूक (त्रुटि) पड़ी, उसने मुझे पकड़ कर इस जन्म में जुलाहा बना दिया (मतलब यह है कि वही ग़लती तुम मत दुहराओ, नहीं तो तुमको भी मेरी तरह जुलाहा होना पड़ेगा)। मैं गोरू (पशु) हूँ और हे ब्राह्मण! तुम मेरे ग्वाले और गुसैयाँ या मालिक हो—हम जैसे अज्ञानियों के तुम जन्म-जन्मान्तर के रखवाले हो। लेकिन तुमने हमें कभी पार उतारकर बेहद्दी मैदान में नहीं चराया अर्थात् हमेशा एक तंग दायरे में चराया या मतलब का ही पाठ पढ़ाया, तुम मेरे कैसे स्वामी हो? भवसागर में डूबते हुए तुझे कुछ उपाय करना चाहिए जिससे इसको तैर कर तू तीर लग सके। राम नाम का जप कर उसी का बेड़ा बाँधो, तुम्हारे लिए यही उपदेश कबीर कह रहा है।

विशेष—कबीर साहब जब यह मानते हैं कि उनको जुलाहा इसी कारण बनना पड़ा कि पूर्वजन्म में ब्राह्मण होने के बावजूद भी ईश्वर की आराधना में त्रुटि हो गई थी तो उसका मतलब यह है कि तुम भी वही त्रुटि कर रहे हो जिससे मुझे डर लग रहा है कि कहीं तुम भी अगले जन्म में पकड़ कर जुलाहा न बना दिए जाओ। कुछ लोग इस टेढ़े मज़ाक को ठीक न समझ कर इसका यह मतलब लेते हैं कि कबीर जाति-पाँति में विश्वास करते थे अथवा ब्राह्मण कुल में जन्म लेने की साध उनके मन में बनी ही रही। लेकिन बात असल में ऐसी नहीं है। वे कहते हैं कि ब्राह्मण होकर पैदा होना तो ओछे कर्मों की निशानी है। गीता में भी कहा गया है कि योग या तपस्या में चूक पड़ने से ही जीव को श्रीमानों या ब्राह्मणों के घर जन्म लेना पड़ता है। आगे तो उनका मज़ाक और तीखा हो गया है। वे कहते हैं कि सामान्य जन तो ढोरों की तरह अज्ञानी होते हैं, उनकी रखवाली का भार उनके मालिक पर

अर्थात् ज्ञानी ब्राह्मणों पर रहता है; लेकिन वह गुसैयाँ कैसा जो एक ही जगह रोज़ जानवरों को चराने के लिए छोड़कर ख़ुद चैन की नींद सोए और कभी भी पार उतार कर अच्छी चरागाह न दिखावे ? यहाँ ऐसे ब्राह्मणों पर छींटाकशी की गई है जो बासी शास्त्रों तथा कर्मकांडों में लोगों की उलझा रखते हैं।

(३४)

पंडिआ कवन कुमति तुम लागे।
बूड़हुगे परिवार सकल सिउं रांम न जपहुं अभागे ।।टेक।।
बेद पुरांन पढ़े का क्या गुनु खर चंदन जस भारा।
रांम नांम की गति नहिं जांनीं कैसै उतरसि पारा ।।१।।
जीअ बधहु सु धरमु करि थापहु अधरम कहहु कत भाई
आपस कौं मुनिवर करि थापहु काकौ कहौ कसाई ।।२।।
मन के अंधे आपि न बुझहु काहि बुझावहु भाई।
माया कारनि बिद्या बेचहु जनमु अबिरथा जाई ।।३।।
नारद बचनु बिआस कहते हैं सुक कौं पूछहु जाई।
कहै कबीर रांमें रमि छुटहु नांहि त बूड़े भाई ।।४।।

क्यों रे पंडिता, तुम किस कुमति में उलझे हो ? सारे परिवार सहित डूब जाओगे—ऐ अभागे, जो तुम राम का जप नहीं करते ! तुम्हारे वेद-पुराण पढ़ने की क्या अच्छाई समझी जाय ? यह वैसा ही है जैसे गधे के ऊपर चन्दन लाद दिया जाय ! राम नाम का रहस्य जान नहीं पाए, कैसे पार उतरोगे (तुम्हारा कैसे उद्धार होगा) ? जीव वधते हो और उसे धर्म बतलाते हो; तो कहो भाई, अधर्म कहाँ है ? एक दूसरे को तो मुनिवर मान बैठे—फिर

किसको कसाई कहा जाय ? ज्ञान के अन्धे लोगो, तुम स्वयं तो कुछ जानते नहीं (अथवा तुम्हें अपनी तक तो जानकारी नहीं) दूसरे को क्या समझाते फिरते हो ? पूँजी के लिए विद्या बेचते हो , इस प्रकार जीवन बेकार चला जाता है । नारद का वचन है, व्यास भी उसी को सही बताता है, शुकदेव से जाकर पूछो (यदि मेरे ऊपर विश्वास नहीं) और कबीर भी वही कहता है कि राम का ही भजन करने से उद्धार होगा—नहीं तो भाई, अब तो डूबे ही हो !

(३५)

कहु पंडित सूचा कवन ठांउं ।
जहां बैसि हउं भोजनु खांउं ।।टेक।।
माता जूठी पिता भी जूठा जूठे ही फल लागे ।
आवाहिं जूठे जाहिं भी जूठे जूठे मरहिं अभागे ।।१।।
अगिनि भी जूठी पांनीं जूठा जूठे बैसि पकाया ।
जूठी करछी अन्न परोसा जूठे जूठा खाया ।।२।।
गोबरु जूठा चउका जूठा जूठे जीनों कारा ।
कहै कबीर तेई जन सूचे जे हरि भजि तजहिं बिकारा ।।३।।

कहो पंडित, कौन जगह पवित्र है जहाँ बैठकर मैं भोजन कर सकूँ ? (संसार में पवित्र कुछ भी नहीं है) माता अपवित्र है, पिता भी अपवित्र है, जो फल लगते हैं (संतति होती है) वे भी अपवित्र हैं । आना भी अपवित्र, जाना भी अपवित्र, अभागों का मरना भी अपवित्र । अग्नि भी अपवित्र, पानी भी अपवित्र, अपवित्र स्थान में बैठकर (भोजन) पकाया भी जाता है । अपवित्र कलछी से अन्न परोसा जाता है और अपवित्र ही

अपवित्र को खाता है। गोबर भी अपवित्र, चौका भी अपवित्र, (चौके में) जो रेखा खींची गई वह भी अपवित्र है। कबीर कहता है, वही लोग पवित्र हैं जो हरि का भजन कर निर्विकार हो जाते हैं।

(३६)

आऊंगा न जाऊंगा मरूंगा न जिऊंगा।
गुर के साथि अमीं रस पिऊंगा ।।टेक।।
कोई फेरै माला कोई फेरै तसबी। देखौ रे लोग दोनौं कसबी ।।१।।
कोई जावै मक्के कोई जावै कासी। दोऊ के गलि परि गई पासी ।।२।।
कहत कबीर सुनौं नर लोई। हंम न किसी के न हंमरा कोई ।।३।।

न आऊँगा, न जाऊँगा और न मरूँगा, न जिऊँगा (आवागमन तथा जीवन-मरण आदि से मुक्त रहूँगा); गुरु के पास भक्ति का अमृत रस पिऊँगा। कोई माला फेरता है, कोई तस्बी फेरता है, किन्तु ऐ लोगो, देखो, ये दोनों पेशेवर (व्यवसायी) हैं। कोई मक्के जाता है, कोई काशी; किन्तु दोनों के गले में वासना का बंधन पड़ा हुआ है। कबीर कहता है—ऐ नर लोगो (मनुष्यों) सुनो, न हम किसी के हैं, न हमारा कोई है (अर्थात् कोई किसी का नहीं, यही असली बात है)।

(३७)

कौंन मरै जनमैं आई।
सरग नरक कौंनैं पाई ।।टेक।।
पंच तत अबिगत तैं उतपनां एकैं किया निवासा।

बिछरें तत फिर सहजि समांनां रेख रही नहिं आसा ।।१।।
जब मैं कुंभ कुंभ मैं जल है बाहरि भीतरि पांनीं ।
फूटा कुंभ जल जलहि समांनां यहु तत कथौ गियांनीं ।।२।।
आदै गगनां अंतै गगनां मद्धे गगनां भाई ।
कहै कबीर करम किस लागै झूठी संक उपाई ।।३।।

कौन मरता है, कौन फिर आकर जन्म लेता है ? और स्वर्ग-नर्क की गति कौन भोगता है ? पाँचों तत्व अविगत (ब्रह्म) से उत्पन्न होते हैं, वही एक इन सब में निवास करता है । तत्वों के बिछुड़ जाने पर फिर वह आत्मा अपनी सहज या स्वाभाविक दशा में पहुँच जाता है; वहाँ न कोई रूपरेखा अथवा सीमा है, न आशा अथवा दिशा है । जल में घड़ा है, घड़े में जल है—उसके बाहर और भीतर पानी ही पानी है । घड़ा फूट जाने पर उसका जल बाहर के जल में समा जाता है—यह तत्व ऐ ज्ञानी, ज़रा समझा कर कहो । अरे भाई, जब आदि में आकाश, मध्य में आकाश, अंत में आकाश है तो फिर कर्म किसको लगता है ? कर्म-भोग की यह सारी शंका झूठ-मूठ उत्पन्न की गई है, ऐसा कबीर कहता है ।

पद का भाव यह है कि असली तत्व ब्रह्म है; उसी से सृष्टि बनती है और उसी में जाकर फिर वह विलीन हो जाती है । इसका मतलब यह हुआ कि वही कर्म करानेवाला भी है, वही करनेवाला भी है—दुनियावी धंधा खाली देखने भर को है ।

(३८)

काहे मेरै बांम्हन हरि न कहहि ।
रांम न बोलहि पांडे दोजक भरहि ।।टेक।।

जिहि मुख बेद गाइत्री उचरै सो क्यूं बांह्मन बिसरु करै ।
जाकै पाइं जगत सभ लागै सो पंडित जिउघात करै ।।१।।
आपन ऊंच नीच घरि भोजनु घनी करम करि उदरु भरहि ।
ग्रहन अमावस रुचि रुचि मांगहि कर दीपकु लै कूप परहि ।।२।।
तूं बांह्मन मैं कासी क जुलहा मोहि तोहि बराबरी कैसे कै बनहि ।
कहै कबीर हंम रांम लगि उबरे बेदु भरोसै पांडे डूबि मरहि ।।३।।

ऐ मेरे ब्राह्मण, तू क्यों हरि का नाम नहीं कहता ? राम नहीं कहता, इसलिए ऐ पांडे, तू नर्क भोगता है। जिसके मुख से वेद तथा गायत्री मंत्र पढ़े जाते हैं वह ब्राह्मण क्यों भूल करता है ? जिसके पाँव पर सारा संसार पड़ता है वही पंडित जीवघात (जीव-हिंसा) करता है। स्वतः ऊँचा है, किंतु नीच के घर भोजन करता है, नीच कर्म करके अपना पेट भरता है। ग्रहण और अमावस्या पर खूब मन लगाकर भीख माँगता है, इस प्रकार हाथ में चिराग रहते हुए भी तू कुएँ में गिरता है (ज्ञान का घमंड करते हुए भी पतन के गड्ढे में गिरता है)। तू ब्राह्मण है और मैं काशी का जुलाहा हूँ; मेरी-तेरी बराबरी कैसे बन पड़ेगी ? कबीर कहता है—मैं तो राम का आसरा लेकर उबर गया, लेकिन ऐ पांडे, तू वेद के भरोसे डूब मरता है ! (मुझमें-तुझमें इतना बड़ा फ़र्क़ है !)

(३६)

हरि बिन भरमि बिगूचे गंदा ।
जापहिं जाउं आपु छुटकावन ते बांधे बहु फंदा ।।टेक।।
जोगी कहहिं जोगु भल मीठा और न दूजा भाई ।
लुंचित मुंडित मोनि जटाधर एहि कहहिं सिधि पाई ।।१।।

पंडित गुनीं सूर कबि दाता एहि कहहिं बड़ हंमहीं ।
जहां ते उपजे तहंई समांनें हरिपद बिसरा जबहिं ।।२।।
तजि बावै दाहिनें बिकारा हरि पद दिढ़ करि गहिए ।
कहै कबीर गूंगै गुड़ खाया पूछें तें क्या कहिए ।।३।।

विना हरि भजन के गंदा प्राणी भ्रम और असमंजस में पड़कर विनष्ट हो गया। जिसके पास अपने उद्धार के लिए जाता हूँ वह स्वयं अनेक सांसारिक बन्धनों में बँधा मिलता है। योगी कहते हैं, 'योग ही मीठा है और भाई कुछ नहीं।' लुंचित, मुंडित, मोनी और जटाधारी—ये लोग कहते हैं, सिद्धि प्राप्त हो गई है। पंडित, कलाकार, शूरवीर, कवि और दाता—ये लोग कहते हैं कि हम ही बड़े हैं, लेकिन हरि भजन में चूक पड़ने पर वे जैसे उपजते हैं वैसे ही विनष्ट हो जाते हैं। विकारों को वाएँ-दाहिने छोड़कर भक्तिभाव को मज़बूती से पकड़ना चाहिए (दाहिने-बाएँ न भटक कर सीधा रास्ता अपनाना चाहिए)। कबीर कहता है, सहज दशा में इतना आनन्द है जैसे गूँगा गुड़ खा ले—वह पूछने पर भला क्या उत्तर देगा? मतलब यह है कि भक्ति का स्वाद केवल अनुभव की वस्तु है, वर्णन उसका नहीं हो सकता।

(४०)

लोका तुम्ह हौ मति के भोरा ।
जउ कासी तनु तजहि कबीरा तौ रांमहि कौंन निहोरा ।।१।।
जो जन भाउ भगति कछु जांनें ताकौं अचरजु काहो ।
जैसें जल जलहीं ढुरि मिलिओ त्यौं ढुरि मिल्यौ जुवाहो ।।२।।
कहै कबीर सुनहु रे लोई भरमि न भूलहु कोई ।

क्या कासी क्या मगहर ऊखर हृदै रांम जौ होई ।।३।।

ऐ लोगो, तुम बुद्धि के बड़े भोले (मूर्ख) हो। अगर कबीर काशी में शरीर त्यागे और उसे मुक्ति मिल जाय, जैसा कि हिन्दुओं का विश्वास है तो फिर उसमें राम का क्या एहसान ? जो सेवक कुछ भी भाव-भक्ति का रहस्य जानता है, उसके लिए राममय हो जाना क्या अचरज की बात है ? जैसे जल ढुलक कर जल में मिल जाता है, वैसे ही जुलाहा (कबीर) भी ढुलक कर अपने कर्ता राम में मिल गया ! कबीर कहता है, ऐ लोगो, सुनो—कोई भ्रम में न भूलो। यदि हृदय में राम है तो क्या काशी और क्या मगहर-ऊसर ? अर्थात् दोनों बराबर हैं।

विशेष—कबीर अपने जीवन के अंतिम दिनों में कुछ कारणवश काशी छोड़कर मगहर चले गये थे। लोगों में यह अंधविश्वास था कि मगहर में मरने से मुक्ति नहीं मिलती। इसी मान्यता के आधार पर 'मगहर मरै सो गदहा होइ' यह कहावत चल पड़ी है। लेकिन कबीर साहब का कहना है कि यदि काशी में शरीर छोड़ने से ही मुक्ति मिल जाय तो फिर राम-भजन की क्या बड़ाई ! असल में राम के प्रति भक्ति-भाव होना चाहिए—फिर चाहे कोई काशी में मरे, चाहे मगहर के ऊसर में, उसे मोक्ष अवश्य मिलेगा। कबीर की भक्ति में पूरी श्रद्धा थी। भक्ति का ही माहात्म्य बताने के लिए उन्होंने लोगों के सामने यह आदर्श रखा कि नीच जुलाहों के परिवार में पलकर और मगहर जैसे अपवित्र स्थान में शरीर-त्याग करने पर भी भक्ति के बल पर कबीर भवसागर से मुक्त हो सकता है (जिसका कि उन्हें पूर्ण विश्वास था—अन्य कोई विश्वास करे न करे) अपनी बढ़ाई दिखलाने के लिए नहीं।

रमैनी

(१)

पहिले मन मैं सुमिरौ सोई । ता सम तुलै अवर नहिं कोई ।।
कोई न पूजै वासौं पांनां । आदि अंति वो किनहुं न जांनां ।।
रूप अरूप न आवै बोला । हरू गरू कछु जाइ न तोला ।।
भूख न त्रिखा धूप नहिं छांहीं । दुख सुख रहित रहै सब मांहीं ।।
अबिगत अपरंपार ब्रह्म, ग्यांन रूप सब ठांम ।।
बहु बिचार कर देखिया, कोई न सारिख रांम ।।

पहले मन में उसी परमात्मा का स्मरण करो, कोई दूसरा उसकी बराबरी में नहीं ठहरता । कोई उससे पार नहीं पाता और उसका आदि-अंत कोई नहीं जान पाया । वह साकार है या निराकार—यह शब्दों में नहीं बताया जा सकता । वह हलका है या भारी, ऐसा कुछ तौला नहीं जा सकता । उसे न भूख लगती है न प्यास, न धूप न छाँह; वह दुःख और सुख से परे है और सब वस्तुओं में मौजूद है । वह अविगत और अपरंपार है, वह ज्ञानस्वरूप है, और सभी ठाँव है । बहुत विचार कर मैंने देखा—राम सरीखा कोई नहीं है ।

(२)

तेहि साहिब के लागौ साथा । दुख सुख मेटिकै रहहु सनाथा ।।
नां जसरथ घरि औतरि आवा । नां लंका का राव सतावा ।।

देव कोखि न अवतरि आवा। नां जसवै लै गोद खिलावा।।
नां वो ग्वालन कै संगि फिरिया। गोबरधन लै नां कर धरिया।।
बावन होइ नहीं बलि छलिया। धरनीं बेद लै न ऊधरिया।।
गंडक सालिगराम न कोला। मच्छ कच्छ होइ जलहि न डोला।।
बद्री बैसि ध्यांन नहिं लावा। परसरांम ह्वै खत्री न सतावा।।
द्वारावती सरीर न छांड़ा। जगन्नाथ लै पिंड न गाड़ा।।
कहै कबीर विचारि करि, ए ऊले ब्यौहार।
याहीतैं जो अगम है, सो बरति रहा संसार।।

उस स्वामी के साथ लगो और अपना दुःख-सुख मिटाकर सनाथ हो जाओ। 'वह साहिब' न तो दशरथ के घर अवतार लेकर पैदा हुआ, न उसने लंका के राजा को सताया। वह देवकी की कोख में अवतार लेकर नहीं आया और न उसे यशोदा ने गोद में लेकर खिलाया। न वह ग्वालों के संग वन-वन फिरा और न उसने गोवर्द्धन को हाथ पर धारण किया। वामन होकर उसने बलि को धोखा नहीं दिया, धरती और वेद को लेकर उनका उद्धार नहीं किया (वाराहावतार में)। गंडक नदी में शालिग्राम बनकर वह उछला-कूदा नहीं, मच्छ और कच्छ होकर (मत्स्यावतार तथा कच्छपावतार में) वह जल में डोला भी नहीं। बदरीनाथ धाम में बैठकर उसने ध्यान नहीं लगाया (नरनारायण अवतार में विष्णु ने बदरी में तपस्या की थी) और न परशुराम होकर क्षत्रियों को ही सताया। द्वारावती में न उसने शरीर छोड़ा और न जगन्नाथपुरी में उसका पिंड गाड़ा गया। कबीर विचार कर कहता है कि ये सब उपरले या व्यर्थ के व्यवहार हैं, इन सब से जो अगम्य है वही सारे संसार में बरत रहा है।

(३)

जिनि कलमां कलि मांहिं पढ़ावा। कुदरति खोजि तिनहुं नहिं पावा।।
करम करीम भए करतूता। बेद कुरांन भए दोउ रीता।।
किरतिम सो जु गरभ अवतरिया। किरतिम सो जो नांमहिं धरिया।।
किरतिम सुन्नति और जनेऊ। हिंदू तुरुक न जांनैं भेऊ।।
मन मुसले की जुगति न जांनैं। मति भुलानि दुइ दीन बखांनैं।।
पांनीं पवन संजोइ करि, कीया है उतपाति।
सुन्नि मैं सबद समाइगा, तब कासनि कहिअै जाति।।

जिन्होंने कलियुग में कलमा पढ़ाया, वे मुहम्मद भी ईश्वर की शक्ति का पता नहीं पा सके। ईश्वर की कृपा से ही सारे कारनामे हुए हैं (सृष्टि रचना हुई है); वेद-क़ुरान दोनों असल में रीते हैं (अर्थात् करीम का करम ही मुख्य बात है, वेद और क़ुरान की थोथी जानकारी बेकार है। कारण यह है कि वेद और क़ुरान की ही दुहाई देकर अनेक बनावटी आचार गढ़ लिये गए जिनका वर्णन आगे है)। जिसने गर्भ में अवतार लिया वह बनावटी है; जिसका नाम धरा गया वह कृत्रिम है। सुन्नत (मुसलमानी) और जनेऊ दोनों कृत्रिम हैं—हिंदू-तुर्क दोनों भेद की बात नहीं जानते। मन की समस्या हल करने की युक्ति जानते नहीं, उनकी मति भ्रष्ट हो गई है, जिससे दो धर्मों की कल्पना करते हैं। पानी और हवा के मेल से जीव की रचना होती है। अन्त में जब शून्य में शब्द समा जायगा तब किससे जाति पूछी जायगी? अर्थात् तब जातियों का भेद-भाव अपने आप खतम हो जायगा।

कलमा—वह वाक्य जो मुस्लिम धर्म का मूल मंत्र है—"ला इलाह इल्लिल्लाह मुहम्मदर्रसूलिल्लाह"।

(४)

पंडित भूले पढ़ि गुनि बेदा। आपु अपनपौ जांन न भेदा ।।
संझा तरपन अरु खट करमां। लागि रहे इनके आसरमां ।।
गइत्री जुग चारि पढ़ाई। पूछहु जाइ मुकुति किन पाई ।।
और के छुएं लेत है सींचा। इनतैं कहहु कवन है नीचा ।।
अति गुन गरब करैं अधिकाई। अधिकै गरबि न होइ भलाई ।।
जासु नांम है गरब प्रहारी। सो कस गरबहिं सकै सहारी ।।
कुल अभिमांन बिचार तजि, खोजौ पद निरबांन।
अंकुर बीज नसाइगा, तब मिलै बिदेही थांन ।।

ब्राह्मण वेद पढ़-गुन कर भी भटक गए—अपना रहस्य आप नहीं जानते। सन्ध्या-तर्पण और षट्कर्म—यह इनके आश्रम में लगे हैं। चारों युग में गायत्री पढ़ाते रहे; उनसे जाकर जरा पूछो, इससे मुक्ति किसने पाई है? और वे छू जाने पर स्नान करते हैं; किन्तु बताओ, इनसे बढ़कर कौन नीच है? अपने अधिक गुणों का घमंड करते हैं। लेकिन अधिक घमंड से भलाई नहीं होती; क्योंकि जिसका नाम गर्वप्रहारी है वह परमात्मा गर्व कैसे सहन कर सकता है? अतः कुल की बड़ाई का विचार छोड़ कर मोक्ष पद खोजो, जब अंकुर सहित बीज विनष्ट हो जायगा, (वासनाएँ खतम हो जायँगी) तभी विदेही पद (मोक्ष) मिलेगा। अच्छे या बुरे चाहे जैसे कर्म हों, यदि उनमें लगाव है तो फिर जन्म धारण कर उनका फल भोगना पड़ता है—इसी लिए कर्मों की उपमा बीज बोने से दी जाती है। बीज यदि भूनकर बोया जायगा तो उसमें अँखुवा नहीं निकलेगा, इसी प्रकार कर्म यदि निरासक्त भाव से किये जायँगे तो जन्म-मरण से मोक्ष मिल जायगा। यही अंकुर समेत बीज नसाने का मतलब है।

(५)

अब गहि रांम नांम अबिनासी । हरि तजि जनि कतहूं कै जासी ।।
जहां जाहि तहां होहि पतंगा । अब जिनि जरसि समुझि बिख संगा ।।
चोखा रांम नांम मनि लीन्हां । भ्रिंगी कीट भिन्न नहिं कीन्हां ।।
भौसागर अति वार न पारा । तिहिं तिरिबे का करहु बिचारा ।।
मनि भावै अति लहरि बिकारा । नहिं गमि सूझै वार न पारा ।।
भौसागर अथाह जल, तामैं बोहिथ रांम अधार ।
कहै कबीर हरि सरन गहु, तब गोबछ खुर बिस्तार ।।

अब अविनाशी राम नाम की शरण गहो । हरि को छोड़ कर किसी के पास मत जाओ । जहाँ जाते हो वहीं पतिंगे बनते हो और अन्त में जलकर नष्ट हो जाते हो; अब जरा समझो, विषय-वासनाओं के साथ (अथवा संसार-रूपी विष के साथ) जलो मत । उत्तम राम नाम मन में स्मरण करने से भृङ्ग और कीट की तरह तुम उसी जैसे हो जाओगे । भवसागर विशाल है, उसका वार-पार नहीं, उसको तरने की युक्ति सोचो । मन को विकार की लहरें बड़ी अच्छी लगती हैं, उसके वार-पार की कोई गति नहीं सूझती । इस भवसागर में अथाह जल है, उसमें राम-रूपी नाव का ही सहारा है । कबीर कहता है, हरि की शरण गहो तब यही अथाह समुद्र बछड़े के खुर बराबर लगने लगेगा ।

साखी

रांम नांम कै पटंतरै, देवे कौं कछु नांहि ।
क्या लै गुर संतोखिए, हौंस रही मन मांहि ।।१।।

सतगुर की महिमां अनंत, अनंत किया उपगार ।
लोचन अनंत उघारिया, अनंत दिखावनहार ।।२।।

चकई बिछुरी रैंनि की, आइ मिलै परभाति ।
जे नर बिछुरे रांम सौं, ते दिन मिले न राति ।।३।।

बिरहा बिरहा मति कहौ, बिरहा है सुलतांन ।
जिहि घट बिरह न संचरै, सो घट सदा मसांन ।।४।।

अंखियन तौ झांई परी, पंथ निहारि निहारि ।
जिभ्या मैं छाला परा, रांम पुकारि पुकारि ।।५।।

नैंनां नीझर लाइया, रहट बहै निस घांम ।
पपिहा ज्यौं पिउ पिउ करौं, कब रे मिलहुगे रांम ।।६।

सोई आंसू साजनां, सोई लोग बिड़ांहि ।
जौ लोइन लोही चुवै, तौ जांनौं हेतु हियांहि ।।७।।

कबीर सूता क्या करै, उठि किन रोवै दुक्ख ।
जाका बासा गोर मैं, सो क्यूं सोवै सुक्ख ।।८।।

तूं तूं करता तूं भया, मुझमैं रही न हूं ।
वारी तेरे नांउं परि, जित देखौं तित तूं ।।९।।

जांन भगत का नित मरन, अनजांनें का राज ।
सर अपसर समझै नहीं, पेट भरन सौं काज ।।१०।।

भगत हजारी कापड़ा, तामैं मल न समाइ ।
साकत काली कामरी, भावै तहां बिछाइ ।।११।।

ऐसा कोई नां मिलै, जासौं रहिए लागि ।
सब जग जरता देखिया, अपनीं अपनीं आगि ।।१२।।

सारा सूरा बहु मिलैं, घाइल मिलै न कोइ ।
घाइल कौं घाइल मिलै, तौ रांम भगति दिढ़ होइ ।।१३।।

हंम घर जाला आपनां, लिए मुराड़ा हाथि ।
अब घर जालौं तास का, जो चलै हंमारै साथि ।।१४।।

मेरा मुझमैं किछु नहीं, जो किछु है सो तेरा ।
तेरा तुझकौं सौंपतां, क्या लागै मेरा ।।१५।।

कस्तूरी कुंडलि बसै, म्रिग ढूंढ़ै बन मांहि ।
ऐसे घटि घटि रांम है, दुनिया देखै नांहि ।।१६।।

हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराइ ।
बूंद समांनीं समुंद मैं, सो कत हेरी जाइ ।।१७।।

तन भीतर मन मांनिया, बाहरि कतहुं न जाइ ।
ज्वाला तैं फिरि जल भया, बुझी बलंती लाइ ।।१८।।

कबीर सबद सरीर मैं, बिन गुन बाजै तांति ।
बाहरि भीतरि रमि रहा, तातैं छूटि भरांति ।।१९।।

गंग जमुन के अंतरै, सहज सुन्नि लौं घाट ।
तहां कबीरा मठ रचा मुनिजन जोवैं बाट ।।२०।।

नैंनां अंतरि आव तूं, ज्यौं हौं नैंन झंपेउं ।
नां हौं देखौं और कौं, नां तुझ देखन देउं ।।२१।।

दोजग तौ हंम अंगिया, यहु डर नांहीं मुज्झ ।
भिस्ति न मेरै चाहिए, बाझ पियारै तुज्झ ।।२२।।

हरि रस पीया जांनिए, ज उतरै नांहि खुमारि ।
मैमंता घूमत फिरै, नांहीं तन की सारि ॥२३॥

प्रेम न बारी ऊपजै, प्रेम न हाटि बिकाइ ।
राजा परजा जिहिं रुचै, सीस देइ लै जाइ ॥२४॥

कबीर नौबति आपनीं, दिन दस लेहु बजाइ ।
यहु पुर पट्टन यहु गली, बहुरि न देखहु आइ ॥२५॥

कबीर धूरि सकेलि के, पुड़िया बंधी एह ।
दिवस चारि का पेखनां, अंति खेह की खेह ॥२६॥

मानुख जनम दुलंभ है, होइ न बारंबार ।
पाका फल जो गिरि परा, बहुरि न लागै डार ॥२७॥

कबीर गरब न कीजिअै, काल गहे कर केस ।
नां जांनौं कहं मारिहै, कै घर कै परदेस ॥२८॥

कबीर मंदिर लाख का, जड़िया हीरै लालि ।
दिवस चारि का पेखनां, बिनसि जाइगा कालि्ह ॥२९॥

ऊजड़ खेड़े ठीकरी, गढ़ि गढ़ि गए कुम्हार ।
रांवन सरिखा चलि गया, लंका का सिकदार ॥३०॥

आजि कि कालि्ह कि पचे दिन, जंगलि होइगा बास ।
ऊपरि ऊपरि फिरींहगे, ढोर चरंते घास ॥३१॥

ज्यौं कोरी रेजा बुनैं, नेरा आवै छोरि ।
अैसा लेखा मीच का, दौरि सकै तौ दौरि ॥३२॥

कबीर हद के जीव सौं, हित करि मुखां न बोलि ।
जे राचे बेहद्द सौं, तिनसौं अंतर खोलि ॥३३॥

कहा चुनावै मैड़िया, चूनां माटी लाइ ।
मीच सुनैंगी पापिनीं, ऊदारैगी आइ ॥३४॥

कबीर जंत्र न बाजई, टूटि गए सब तार ।
जंत्र बिचारा क्या करै, चले बजावनहार ।।३५।।

चाकी चलती देखिकै, दिया कबीरा रोइ ।
दोइ पट भीतर आइकै, सालिम गया न कोइ ।।३६।।

हे मतिहींनीं माछरी, झींवर मेला जाल ।
डाबरियां छूटै नहीं, सकै त समुंद सम्हालि ।।३७।।

कहा चुनावै मैड़ियां, लंबी भीति उसारि ।
घर तौ साढ़े तीनि हथ, घनां त पौंनें चारि ।।३८।।

बारी बारी आपनीं, चले पियारे मीत ।
तेरी बारी जीयरा, नेरी आवै नीत ।।३९।।

पांनीं केरा बुदबुदा, अस मानुस की जाति ।
देखत ही छिपि जाइंगे, ज्यौं तारे परभाति ।।४०।।

रोवनहारे भी मुए, मुए जलावनहार ।
हा हा करते ते मुए, कासौं करौं पुकार ।।४१।।

पंथी ऊभा पंथ सिरि, बगुचा बांधा पूठि ।
मरनां मुंह आगैं खड़ा, जीवन का सब झूठि ।।४२।।

जिनि हंम जाए ते मुए, हंम भी चालनहार ।
हंमरै पाछैं पूंगरा, तिन भी बांधा भार ।।४३।।

कबीर यहु जग कछु नहीं, खिन खारा खिन मीठ ।
कालिह अलहजा मैड़ियां, आजु मसांनां दीठ ।।४४।।

बेटा जाए क्या हुआ, कहा बजावै थाल ।
आवन जावन ह्वै रहा, ज्यौं कीड़ी का नाल ।।४५।।

रांम पदारथु पाइ करि, कबिरा गांठि न खोलि ।
नहिं पट्टन नहिं पारिखू, नहिं गाहक नहिं मोलि ।।४६।।

हीरा तहां न खोलिए, जहं कुंजड़न की हाटि ।
सहजै गांठी बांधिकै, लगिए अपनीं बाटि ।।४७।।

मरतां मरतां जग मुवा, मुवै न जानां कोइ ।
दास कबीरा यौं मुवा, ज्यौं बहुरि न मरनां होइ ।।४८।।

कबीर मन निरमल भया, जैसा गंगा नीर ।
तब पाछैं लागा हरि फिरै, कहत कबीर कबीर ।।४९।।

जीवन तें मरिबौ भलौ, जौ मरि जानैं कोइ ।
मरनैं पहिलै जो मरै, तौ कलि अजरावर होइ ।।५०।।

कबीर हरदी पीयरी, चूनां ऊजल भाइ ।
रांम सनेही यूं मिलै, दोनउं बरन गंवाइ ।।५१।।

हद्द चलै सो मानवा, बेहद चलै सो साध ।
हद बेहद दोऊ तजै, ताकर मता अगाध ।।५२।।

हिंदू मूआ रांम कहि, मूसलमांन खुदाइ ।
कहै कबीर सो जीवता, जो दुहुं कै निकटि न जाइ ।।५३।।

काबा फिरि कासी भया, रांमहिं भया रहीम ।
मोट चून मैदा भया, बैठि कबीरा जीम ।।५४।।

सेख सबूरी बाहिरा, क्या हज कावै जाइ ।
जाकी दिल साबित नहीं, ताकौं कहां खुदाइ ।।५५।।

कासी काठैं घर करै, पीवै निरमल नीर ।
मुकुति नहीं हरि नांउं बिनु, यौं कहै दास कबीर ।।५६।।

सांईं सेती सांच चलि, औरां सौ सुध भाइ ।
भावै लांबे केस करि, भावै घुरड़ि मुड़ाइ ।।५७।।

साधु भया तौ क्या भया, माला मेली चारि ।
बाहरि ढोला हींगला, भीतर भरी भंगारि ।।५८।।

केसौं कहा बिगारिया, जे मूड़ै सौ बार ।
मन कौं काहे ना मूड़िए, जामैं बिखै बिकार ।।५६।।

सोई आखर सोइ बैंन, जन जू जू बाचवंत ।
कोई एक मेलै लवनि, अमीं रसाइन हंत ।।६०।।

पांनीं हू तैं पातरा, धूंवां हू तैं झीन ।
पवनां बेगि उतावला, सो दोस्त कबीरै कीन ।।६१।।

कबीर भली मधूकरी, भांति भांति कौं नाज ।
दावा किसही का नहीं, बिन बिल्लाइत बड़ राज ।।६२।।

चिंता छांड़ि अचिंत रहु, सांईं है समरत्थ ।
पसु पंखेरू जीव जंतु, तिनकी गांठी किसा गरत्थ ।।६३।।

रांम नांम सौं दिल मिली, जम हंम परी विराइ ।
मोहिं भरोसा इस्ट का, बंदा नरकि न जाय ।।६४।।

गावन ही मैं रोज है, रोवन ही मैं राग ।
इक बैरागी ग्रिह करै, एक ग्रिही बैराग ।।६५।।

कबीर पढ़िबा दूरि करि, पुसतग देहु बहाइ ।
बावन अक्खिर सोधिकै, ररै ममैं चित लाइ ।।६६।।

सहजैं सहजैं सब गए, सुतं बित कांमिनि कांम ।
एकमेक होइ मिलि रहा, दास कबीरा रांम ।।६७।।

अर्थ—राम-नाम की बराबरी में, जिसे कि सद्गुरु ने मुझे दिया, मेरे पास देने को कुछ नहीं है। किस चीज़ के विरते पर उनको खुश किया जाय, यह साध मन में बनी ही रही—पूरी न हुई ।१।

सद्गुरु की महिमा अनन्त है, और उन्होंने मेरे प्रति अनन्त उपकार

किये। उन्होंने मेरे अनन्त नेत्र खोल दिए, जिनसे मैं अनन्त प्रभु के दर्शन कर सकता हूँ ।२।

रात की बिछुड़ी चकई सवेरे चकवा से आ मिलती है, किन्तु जो राम से विमुख हैं वे न दिन में मिलते हैं, न रात में अर्थात् उनके दुःख का अन्त कभी न होगा ।३।

'विरहा' 'विरहा' (तिरस्कार की भावना से) मत कहो, विरह शाहंशाह है ! जिस घट में विरह नहीं पैदा होता वह सदैव श्मशान की तरह रहता है ।४।

रास्ता देखते-देखते तो आँखों में झाँई पड़ गई (नेत्रों की रोशनी मंद पड़ गई) और राम-राम पुकारते-पुकारते जीभ में छाले पड़ गए ।५।

आँखों से आँसू का झरना वह चला है और रात-दिन रहट जैसा चल रहा है। पपीहे के समान पी-पी रट रही हूँ—हे मेरे राम, तुम कब मिलोगे ? ।६।

वही आँसू सज्जनों के, वही दुर्जनों के। नेत्रों से जब लोहू चुए, अर्थात् 'रकत के आँसू रोए' तब समझो कि हृदय में सच्चा प्रेम है ! ।७।

कबीर कहता है, सो-सोकर क्या करेगा ? क्यों नहीं उठकर अपना दुखड़ा रोता ? जिसका निवास कब्र में होना है, वह क्यों सुख से सोए ? ।८।

तू-तू करते तू ही हो गया—मुझमें मेरापन कुछ भी नहीं रह गया। मैंने अपने आपको तेरे नाम पर निछावर कर दिया, अब तो जहाँ देखती हूँ वहाँ तू ही तू है ।९।

ज्ञानी भक्त की रोज़ मुसीबत है, अज्ञानी का राज है; क्योंकि वह आगा-पीछा तो समझता नहीं—बस पेट भरने से मतलब ।१०।

वैष्णव भक्त हज़ारिया कपड़ा है, उसमें मैल नहीं समाती (क्योंकि उसे जतन से रखा जाता है, मैल में नहीं बिछाया जाता)। इसके खिलाफ

शाक्त काली कामरी है—जहाँ चाहो, बिछा लो ।११।

एक दम बारीक सूत के कपड़े को हज़ारिया कपड़ा कहते थे ।

ऐसा कोई नहीं मिलता जिसका आसरा पकड़ा जाय, क्योंकि मैंने सारे संसार को (संसार के प्रत्येक व्यक्ति की) अपनी-अपनी आग में जलते देखा अर्थात् अपनी-अपनी विपत्ति भोगते देखा ।१२।

निशानची और सूरमा तो बहुत मिलते हैं, घायल कोई नहीं मिलता । घायल को अगर घायल मिल जाय तो राम-भक्ति मज़बूत पड़ जाय । मतलब यह है कि डींग मारने वाले उपदेशक तो बहुत मिलते हैं, किंतु सचमुच का विरही साधक बहुत मुश्किल से मिलता है ।१३।

मशाल हाथ में लेकर मैंने अपना घर जला दिया, अब उसका घर जलाऊँगा जो मेरे साथ चलेगा । अर्थात् आदर्श भक्त को दौलत जोड़ने की भावना एकदम छोड़ देनी चाहिए ।१४।

मुझमें मेरा अपना कुछ नहीं है, जो कुछ है सो तेरा ही है; तेरा तुझको सौंपने में मेरा क्या लगेगा ? ।१५।

कस्तूरी मृग की नाभि में रहती है, किंतु मृग उसे वन-वन ढूँढ़ता है । इसी प्रकार घट-घट में राम है, लेकिन दुनिया मृग के समान अज्ञानवश उसे नहीं देख पाती ।१६।

हे सखी, ढूँढ़ते-ढूँढ़ते कबीर खुद खो गया । बूँद (जीवात्मा) समुद्र (परमात्मा) में समा गई है—उसे कैसे ढूँढ़ा जा सकता है ? ।१७।

शरीर के भीतर ही मन मान गया अब बाहर कहीं नहीं जाता; जलती हुई आग बुझ गई और ज्वाला शीतल जल में बदल गई ।१८।

कबीर कहता है कि शरीर में बिना रस्सी (ताँत) के ही आवाज़ (अनाहत नाद) हो रही है । बाहर-भीतर वही शब्द फैला है, इससे सारी दुविधा दूर हो गई ।१९।

गंगा-यमुना (इड़ा-पिंगला) के बीच में (सुषुम्णा पर) सहज शून्य का घाट है, वहाँ कबीर ने मठ रचा है, जिसमें प्रवेश पाने के लिए मुनिजन टकटकी लगाए रास्ता देखा करते हैं (अर्थात् यह जगह मुनियों को भी दुर्लभ है) ।२०।

जब मैं अपने नेत्र मूँदूँ, तू उनके अंदर आ जा, जिससे न तो मैं किसी और को देखूँ, न तुझे किसी और को देखने दूँ ।२१।

दोज़ख (नर्क) तो हमने मंज़ूर कर लिया, उसका डर मुझे बिलकुल नहीं है, क्योंकि ऐ प्यारे, तेरे बिना मुझे बिहिश्त (स्वर्ग) भी नहीं चाहिए ।२२।

हरि-रस (भक्ति मदिरा) पिया हुआ तब समझना चाहिए जब कि उसकी खुमार कभी न उतरे, पीने वाला भक्त होकर घूमता फिरे और उसे शरीर की भी सुध-बुध न रह जाय (ऐसा उस नशे में धुत्त रहे) ।२३।

प्रेम न बाग में पैदा होता है और न प्रेम हाट में बिकता है, राजा या प्रजा जिसको रुचे, अपना सिर दे और प्रेम ले जाय ।२४।

कबीर कहता है, दस दिन अपनी नौबत बजा लो। यह पुरपट्टन (शहर) और यह गली फिर आकर नहीं देखोगे ।२५।

कबीर कहता है कि धूल समेटकर यह शरीर-रूपी पुड़िया बाँधी गई है। चार दिन का खिलवाड़ है—अन्त में मिट्टी की मिट्टी अर्थात् जैसी मिट्टी थी वैसी ही फिर मिट्टी हो जायगी ।२६।

मनुष्य जन्म दुर्लभ है, बारम्बार नहीं होता—पक्का फल जो गिर पड़ता है तो फिर डाल में नहीं लगता ।२७।

कबीर कहता है कि गर्व नहीं करना चाहिए क्योंकि काल तुम्हारे केश पकड़े हुए है—वह तुम्हें घर में या परदेस में न जाने कहाँ मार दे ।२८।

कबीर कहता है : लाह का भवन जो हीरों और लालों से जड़ा हुआ है, चार दिनों का खेल है—वह कल को ही अर्थात् थोड़े ही समय में विनष्ट हो जायगा। (क्योंकि लाह तनिक भी आँच से पिघल जायगी।) इसी प्रकार मानव शरीर, जिसका अनेक प्रकार से सजाव-शृंगार किया जाता है, थोड़े ही समय में विनष्ट हो जायगा।२९।

उजड़े गाँव में ठीकरे ही शेष रह गए और जिन बर्तनों के ये ठीकरे हैं, उनको गढ़नेवाले कुम्हार उन्हें गढ़कर न जाने कब के चले गये। वे ही नहीं, रावण सरीखा आदमी भी चला गया जो लंका का स्वामी था।३०।

आज या कल या पाँचवें दिन जङ्गल में निवास होगा (जङ्गल में दफन दिया जायगा) और ऊपर-ऊपर घास चरते हुए पशु घूमें-फिरेंगे।३१।

जैसे जुलाहा कपड़े का थान बुनता है तो उसका दूसरा छोर निकट आता जाता है, वही हिसाब मृत्यु का भी है—अगर तू अपने बचाव के लिए भाग सके तो भाग।३२।

कपड़ा बुनते समय जितने सूत बाने के भरे जाते हैं उतना ही उसका अन्तिम छोर नज़दीक आता जाता है, उसी प्रकार जितनी साँसें भरी जाती हैं, जीवन की उतनी ही घड़ियाँ कम होती जाती हैं और अन्तिम समय निकट आता जाता है। इसलिए कबीर साहब की चेतावनी यह है कि प्राणी को कुछ ऐसे कार्य करने चाहिए जिससे मृत्यु का भय दूर हो और अमरता की भावना आए।

कबीर कहता है, हद वाले लोगों से (या सीमित विचार के लोगों से) तनिक भी स्नेहपूर्ण बात मुख से मत बोलो, किंतु जो निस्सीम विचार के हों उनके सामने अपना हृदय खोलकर कर रख दो।३३।

चूना-मिट्टी लगाकर महल क्या चुनवा रहा है? कहीं मौत पापिनी सुनेगी तो आकर ढहा देगी। (मतलब यह है कि इस नाशवान जगत्

में बड़े-बड़े महल भी गिर जाते हैं, अतः केवल उनको बना देने में कोई परमार्थ नहीं है। आदमी को अमर होने के लिए उससे भी ज्यादा बड़े कार्य करने चाहिए)। ३४।

कबीर कहता है कि अब बाजा नहीं बजता, क्योंकि इसके सब तार टूट गये हैं (अर्थात् शरीर बेजान होने के कारण सुन्न पड़ जाता है) बाजा बेचारा क्या करे जब बजानेवाले ही चले गए! (अर्थात् जब प्राण ही चला गया जो उसे चलाता-फिराता था तो शरीर बेचारा क्या करे?)। ३५।

चक्की चलती हुई देखकर कबीर यह सोचकर रो पड़ा कि दो पाटों के बीच में आकर कोई समूचा नहीं निकला। मतलब यह कि जिस प्रकार चक्की के दो जाँतों में पड़कर अन्न पिस जाता है उसी प्रकार धरती और आसमान के बीच आकर, जो चक्की के दो बड़े पाटों के समान हैं, सब पिस जाते हैं या नष्ट हो जाते हैं। ३६।

ऐ निर्बुद्धि मछली (जीव), मल्लाह (काल या यम) ने जाल फेंका है (झपट्टा मारा है)। तलैयों में (मूर्तिपूजा आदि छोटे साधनों में) तो बचेगी नहीं; यदि हो सके तो समुद्र में जाकर अपनी सँभाल या रक्षा कर अर्थात् परमात्मा की शरण में जाकर अपनी रक्षा कर। ३७।

लम्बी दीवाल खड़ी कर महल क्या चुनवा रहा है? तुम्हारा घर तो साढ़े तीन हाथ का होना चाहिए (क्योंकि साढ़े तीन हाथ का मानव शरीर माना जाता है)—बहुत हुआ तो पौने चार हाथ का। ३८।

अपनी-अपनी बारी पर सभी प्यारे मित्र चले गए (स्वर्ग सिधार गए)। ऐ प्राण, अब तेरी बारी भी रोज़-ब-रोज़ निकट आती जा रही है! तात्पर्य यह कि सभी मृत्यु की छाया में हैं—यह सोचकर अच्छे काम में लग जाना चाहिए। ३९।

पानी का बुलबुला जैसा क्षणिक होता है वैसी ही मनुष्य की भी नश्वर जाति है। देखते-देखते वे आँख से ओझल हो जायँगे—जैसे सवेरे के समय

तारे छिप जाते हैं ।४०।

(किसी की मृत्यु के बाद) रोनेवाले भी मर गए, जिन्होंने दूसरों के शव को जलाया वे भी मर गए, जो हाय-हाय करके दूसरों को दिलासा देते थे वे भी मर गए, तो अब किससे पुकार लगाऊँ ? (ऐसा कौन बचा ?) ।४१।

पंथी पंथ पर खड़ा है—पीठ पर गठरी बाँधे (अर्थात् अपने कर्मों की पोटली बाँधे मुसाफिर की तरह प्राणी मौत की राह पर खड़ा हो जाता है) मरण साक्षात् मुँह के सामने खड़ा मिलता है—जीवन की सारी चर्चा झूठी है ।४२।

जिन्होंने हमें पैदा किया, वे मर गए, हम भी अब चलने को तैयार हैं। हमारे पीछे जो हमारे बच्चे हैं उन्होंने भी भार बाँध लिया है। (अर्थात् जाने की तैयारी कर ली है।) ।४३।

कबीर कहता है, यह संसार कुछ नहीं है (इसका कुछ निश्चयात्मक रूप नहीं)—क्षण में ही खारा लगता है, क्षण में ही मीठा। कल महलों में जो आलीजाह (महामान्य) था वही आज श्मशान में दीख पड़ा ।४४।

बेटा पैदा करने से क्या हुआ ! क्या प्रसन्नता के मारे थाल बजा रहा है ? यह आना-जाना तो चींटियों की कतार की तरह लगा हुआ है ।४५।

राम-रूपी बेशकीमती मणि पाकर ऐ कबीर, गाँठ मत खोलो (उसे गाँठ में बाँध कर ही रखो), क्योंकि न वह नगर है जिसके नागरिक इसे खरीदें, न इसके सच्चे पारखी हैं, न इसके सच्चे गाहक हैं, न इसका मूल्य ही उनके पास है ।४६।

हीरा वहाँ नहीं खोलना चाहिए जहाँ कुंजड़ों की हाट हो। उसे सीधे गाँठ में बाँधकर चुपचाप अपने रास्ते लगना चाहिए। मतलब यह है कि उचित आदमी पाने पर ही ज्ञानचर्चा करनी चाहिए। कुंजड़े फल, सब्जी आदि का रोज़गार करते हैं। उनकी लागत में और हीरों के

रोज़गार की लागत में बहुत ज्यादा अंतर होता है, अतः कुंजड़े हीरों का मोल कहाँ तक लगा सकते हैं ।४७।

मरते-मरते संसार मर गया, फिर भी सचमुच का मरना किसी ने न जाना । कबीरदास ऐसा मरा जिससे कि बार-बार न मरना पड़े । यहाँ कबीर ने आध्यात्मिक तथा सांसारिक मृत्यु का अंतर बताया है । पहले ढंग से मरने का मतलब है जीते जी मरना । जो ऐसी मौत मरना सीख ले वह जरा-मरण से मुक्त हो जाता है ।४८।

कबीर कहता है, जब मन निर्मल हो गया जैसा कि गंगाजल होता है, तब भगवान 'कबीर' 'कबीर' कहते हुए मेरे पीछे घूमने लगा । अर्थात् दिल साफ होने पर केवल परमात्मा मिलते ही नहीं बल्कि भक्त की सारी चिंता वे अपने ऊपर ओढ़ लेते हैं—उसी दशा का वर्णन यहाँ कबीर ने अपने फक्कड़ाना लहजे में किया है ।४९।

जीवन से मरना अच्छा है, अगर कोई मरना जान ले ! (देह की) मृत्यु के पहले ही जो अपने मन को मार ले अर्थात् जीवन्मृत हो जाये तो वह कलियुग में अजर-अमर हो जाये ।५०।

कबीर कहता है कि हल्दी पीली होती है और चूना सफेद रंग का होता है, किंतु राम के स्नेही प्रेम के लाल रंग में ऐसे मिल गए कि दोनों रंग ग़ायब हो गए ।

हल्दी और चूना दो विरोधी मतों के बोधक हैं, किंतु दोनों को मिला देने पर लाल रंग पैदा होता है जिसमें दोनों रंग मौजूद रहते हुए भी एक ही रंग के दिखलाई पड़ते हैं । साहित्य में लाल रंग प्रेम का सूचक माना गया है, अतः इस साखी का 'स्नेही' शब्द विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है । मतलब यह है कि राम-भक्त न इस पक्ष का होता है और न उस पक्ष का, बल्कि मध्यममार्गी होता है, जिसमें दोनों पक्ष अपना भेद मिटाकर

रहते हैं। दूसरा मतलब यह है कि जिस प्रकार लाल रंग ही पीले और सफ़ेद को अपने में छिपा रखता है, उसी प्रकार प्रेम ही दो विरोधी मतों को मिला सकता है।५१।

जो हद के भीतर चले वह साधारण मानव है, जो सीमाएँ छोड़कर बेहद्दी आचरण करे वह साधु है, लेकिन जो हद और बेहद दोनों को छोड़ दे उसी का मत असल में अगाध है। ५२।

हिंदू 'राम' 'राम' कहकर मर गया और मुसलमान 'खुदा' 'खुदा' कहकर। कबीर कहता है, ज़िंदादिल वह है जो दोनों के पास न फटके। कबीर का मतलब यहाँ ऐसे नासमझ हिंदुओं से है, जो केवल राम को परमात्मा मानकर खुदा का विरोध करते या ऐसे मुसलमानों से जो केवल खुदा को मानकर राम का विरोध करते थे।५३।

क़ाबा ही उलटकर काशी हो गया, राम ही रहीम हो गया। मोटा आटा पिसकर महीन मैदा हो गया है जिसे कबीर बैठकर जीम रहा है ।५४।

शेख सन्तोष के बिना हज करने क़ाबे क्या जाता है? जिसका दिल दुरुस्त नहीं उसको ख़ुदा कहाँ मिलेगा? ।५५।

काशी के निकट ही घर बनावे और गंगा का निर्मल जल पिया करे, लेकिन हरि के सुमिरन बिना मुक्ति नहीं मिलेगी—ऐसा कबीरदास कहता है। मतलब यह है कि केवल काशी में रहने से मुक्ति नहीं मिलती, जैसा लोगों का विश्वास है। मुक्ति मिलती है परमात्मा के नाम में श्रद्धा रखने से।५६।

स्वामी (परमात्मा) के साथ सच्चाई का आचरण करो और दूसरों से शुद्ध भाव या सिधाई का—फिर चाहे बाल लम्बे कर लो, चाहे उसे सफ़ाचट मुड़ा लो; मतलब यह है कि बाहरी वेशभूषा चाहे जैसी हो, उससे कोई अंतर नहीं पड़ता, यदि मन शुद्ध हो।५७।

साधु हो गया और चार मालाएँ गले में डाल लीं तो उससे क्या हुआ ? बाहर-बाहर तो ईंगुर रँगकर लाल चमकदार कर दिया और अंदर भंगार भरी है अर्थात् बाहरी वेशभूषा तो अच्छी बना ली, किंतु अंदर मन में वासनाओं का कचड़ा भरा है ।५८।

केशों ने क्या बिगाड़ा है जो उन्हें सौ बार मूड़ता है ? मन को ही क्यों न मूड़ा जाय (शुद्ध किया जाय) जिसमें विषय विकार भरे हैं ? ।५९।

वही अक्षर (शब्द), और वही वचन (वाक्य), किंतु हर आदमी उन्हें जुदा-जुदा ढंग से बोलता है । कोई एक उनमें लुनाई (सुंदरता) मिला देता है तो वही अमृत रसायन बन जाता है ।६०।

पानी से भी पतला, धुएँ से भी झीना, वेग में पवन से भी अधिक उतावला या तेज़—ऐसे ब्रह्म को कबीर ने दोस्त बनाया है ।६१।

कबीर कहता है, भली है भीख जिसमें भाँति-भाँति के अन्न खाने को मिलते है । इसमें किसी का दावा नहीं, यह बिना विलायत का बड़ा राज है ! ।६२।

चिंता छोड़कर निश्चिंत रहो, स्वामी समर्थ है । पशु-पक्षी तथा जीव-जंतु की गाँठ में कौन पूँजी है ? मतलब यह है, वह समर्थ स्वामी निपुँजिए पशु-पक्षियों का भी पालन-पोषण करता है तुम्हारा क्यों न करेगा ? ।६३।

राम नाम से दिल मिल गया है जिससे यम के और मेरे बीच खाई पड़ गई । मुझे अपने इष्टदेव का भरोसा है—बंदा नरक में नहीं जायगा ।६४।

गाने ही में रोना छिपा है और रोने ही में गाना—इसी प्रकार कोई वैरागी घर बना लेता है (गृहस्थी जोड़ता है), कोई गृहस्थ वैराग रमा लेता है ।६५।

कबीर कहता है, पढ़ना दूर करो और पुस्तक फेंक दो । वर्णमाला के

बावन अक्षरों को शोधकर रकार और मकार में चित्त लगाओ (जिनसे 'राम' बनता है—शेष सारी पढ़ाई बेकार है !) ।६६।

धीरे-धीरे सब चले गए—सुत गया, वित्त गया, कामिनी गई और काम गया; अर्थात् सभी वासनाएँ समाप्त हो गईं—अब तो कबीरदास राम में 'एकमेक' होकर मिल रहा है।

मतलब यह कि जितना ही गहरा लगाव दुनियावी चीज़ों से था, उतना ही उनसे हटने पर राम से हो गया जिससे भक्त में और राम में फ़र्क़ ही नहीं रह गया।

तुलसीदास ने लिखा है—

कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ।।

कबीर और तुलसी दोनों ने सहज ज्ञान पर जो बल दिया है वह ख़ासतौर से सोचने लायक है। भक्ति का असल में यही रहस्य है। रामचरितमानस का यह आखिरी दोहा है, जिससे इस सिद्धांत की ओर तुलसी की रुझान साफ़ जाहिर है। कबीर का भी भक्ति मार्ग ऐसा ही है जिसमें सारी सांसारिक वासनाएँ धीरे-धीरे राम के लिए जगह छोड़-छोड़कर ख़ुद ख़तम होती जाती हैं।६७।

राष्ट्रीय जीवन-चरित माला

प्रधान-सम्पादकः
डॉ० बी० वी० केसकर

सम्पादकः

प्रो० के० स्वामीनाथन् — **श्री एम० वी० देसाई**

आगामी पुस्तकें

१. शंकराचार्य	डॉ० टी० एम० पी० महादेवन
२. रामानुजाचार्य	श्री आर० पार्थसारथी
३. गुरु नानक	डॉ० गोपालसिंह, संसद सदस्य
४. स्वामी रामदास	श्री ए० आर देशपाण्डे
५. सूरदास	डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा
६. कम्बन	श्री पी० श्री० आचार्य
७. कबीर	डॉ० पारसनाथ तिवारी
८. तुलसीदास	डॉ० माताप्रसाद गुप्त
९. मीराबाई	डॉ० श्रीकृष्ण लाल
१०. रहीम	डॉ० एस० बी० सिंह
११. खुसरो	सैयद गुलाम समनानी
१२. हर्ष	श्री वी० डी० गांगल
१३. शेरशाह	श्री विद्या भास्कर
१४. राणा प्रताप	श्री भगवतीशरण सिंह
१५. अहिल्याबाई	श्री हीरालाल शर्मा
१६. रानी लक्ष्मी बाई	श्री वृन्दावनलाल वर्मा
१७. नाना फड़नवीस	डॉ० वाई० एन० देवधर
१८. रणजीतसिंह	डॉ० गंडासिंह

१६. शिवाजी राव गायकवाड़	प्रो० के० एच० कामदार
२०. तानसेन	ठाकुर जयदेवसिंह
२१. त्यागराज	प्रो० पी० साम्बमूर्ति
२२. विष्णु नारायण भातखण्डे	डॉ० एस० एन० रतनजनकर
२३. विष्णु दिगंबर पलुस्कर	श्री वी० आर० आठवले
२४. दीक्षितर	जस्टिस टी० एल० वैंकटराम अय्यर
२५. जगदीशचन्द्र बसु	श्री जितेन सेन

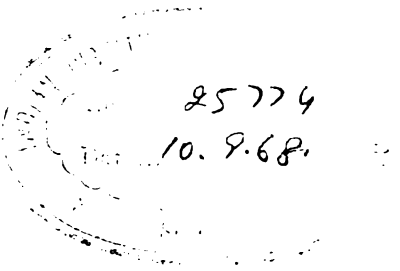

12

इस पुस्तक के लेखक डॉ. पारसनाथ तिवारी इस समय इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक हैं। आपने कबीर पर विशेष रूप से शोध-कार्य किया है जिस पर आपको प्रयाग विश्वविद्यालय से डी. फ़िल्. की उपाधि प्राप्त हुई। आपका शोध-ग्रन्थ "कबीर ग्रन्थावली" हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुआ है, जिसके सम्बन्ध में स्व. डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा था, 'कबीर की मूल रचना और उसका पाठ क्या है, यह प्रश्न अत्यन्त उलझा हुआ है। आपने इस दुष्प्रवेश्य वन में पैठ कर जो मार्गदर्शन किया है, वह सर्वथा श्लाघनीय है।' "कबीर-ग्रन्थावली" के अतिरिक्त डॉ. तिवारी ने मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर अनेक शोध-निबन्ध भी प्रस्तुत किये हैं।

कबीर की रचना की तरह, उनके जी
के सम्बन्ध में भी लोगों को बहुत कम
कारी है। डॉ. तिवारी ने गहन अध्ययन
शोध के पश्चात् उपलब्ध तथ्यों तथा जन
के आधार पर अत्यन्त सरल और
ढंग से साधारण पाठकों के लिए यह जीवनी
प्रस्तुत की है।

Library IIAS, Shimla
H 811.21 K 112 T
00025774